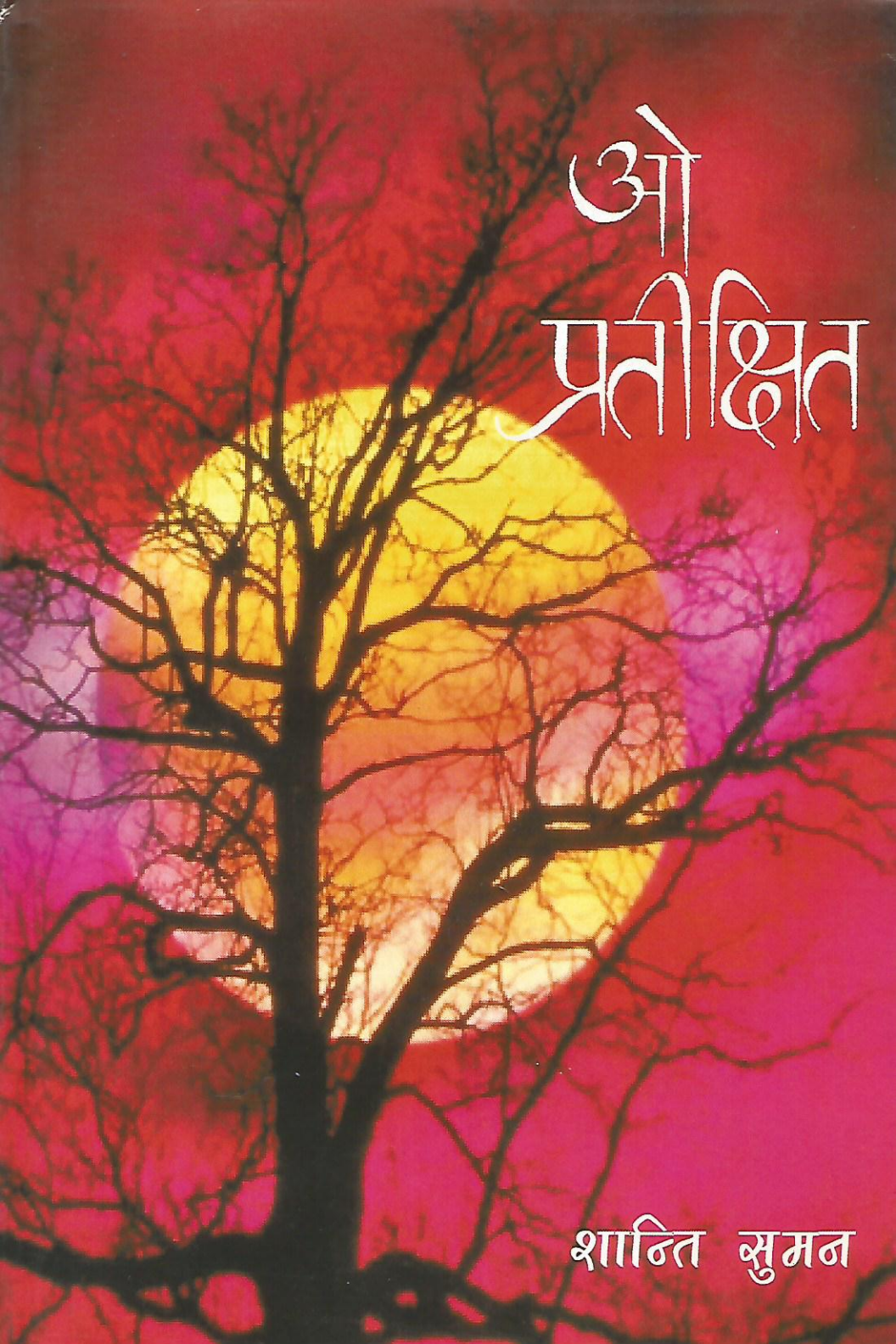
ओ
प्रतीक्षित
शान्ति सुमन

शान्ति सुमन प्रायः समाज् की वास्तविकताओं और जीवन के अनुभवों के बारे में बयान या ब्याख्यान नहीं देतीं, वे चित्रों और संकेतों में अपनी बात कहती हैं।

— डॉ. मैनेजर पाण्डेय

हिन्दी के नवगीतकारों में डॉ. शान्ति सुमन का नाम बहुचर्चित और सुप्रसिद्ध है। इनके पहले गीत संकलन 'ओ प्रतीक्षित' (१९७०) के पूर्व बहुत कम गीत संकलन प्रकाशित हुए थे जिनका संबंध नवगीत से जुड़ा।... वे नवगीतकारों की पहली पंक्ति में हैं और उन्हें छोड़कर नवगीत पर किया गया कोई भी विचार उचित और प्रामाणिक नहीं होगा।

— डॉ. रविभूषण

शान्ति सुमन हमारे समय के उन कुछ दुर्लभ गीतकारों में हैं जो शिल्पगत और शैलीगत अलगाव के बावजूद सोच और संवेदना के स्तर पर समकालीन कविता से गहरे जुड़े हुए हैं।

— मदन कश्यप

मध्यवर्गीय जिन्दगी के आत्मीय प्रसंग, रोमानी संवेदना की धीमी आँच में सधी सघन अनुभूति और रोजमर्रे की वस्तुगत दुनिया से उठाये गये स्वस्थ और ताजे बिम्ब - शान्ति सुमन के गीतों का यही जीवित रचना संसार है।

— नचिकेता

गीत को आपसे बड़ी अपेक्षायें हैं।

— रमेश रंजक

शान्ति सुमन के पास मध्यवर्गीय लोगों की दैनिक तकलीफों के बोध को मानवीय संवेदना का अंग बना देनेवाला गीत-तत्त्व है।

— महेश्वर

शान्ति सुमन के गीतों में मोहभंग की मनःस्थिति के विभिन्न पक्षों को व्यक्त किया गया है।

- डॉ. ओम प्रकाश ग्रेवाल

शान्ति सुमन के यहाँ शब्द बोलते हैं - चाहे वे बिम्बों के रूप में हों या रूपक के रूप में। साथ ही इनमें एक प्रकृति बोलती होती है और होती है उसकी हरियाली, उसका सौन्दर्य। यहाँ तक कि रिश्तों की अकुलाहट में भी यह प्रकृति मौजूद है।

ओ प्रतीक्षित

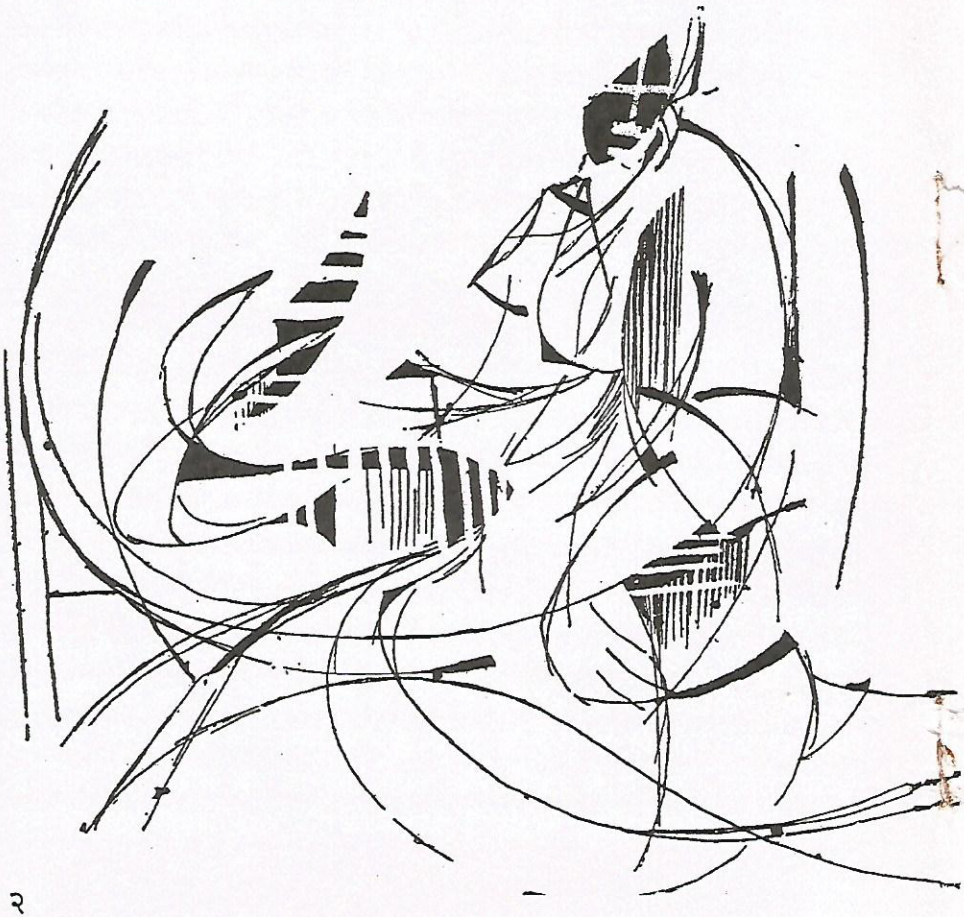

ओ प्रतीक्षित

शान्ति सुमन

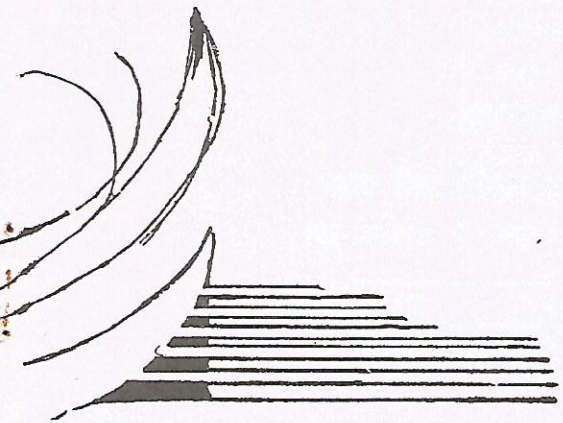

ईशान प्रकाशन,
मीठनपुरा, क्लब रोड, रमना,
मुजफ्फरपुर-२

मुखपृष्ठ-चित्र-चयन : ईशान वर्मा

© डा. शान्ति सुमन

प्रथम संस्करण	1970
प्रकाशक : लहर प्रकाशन, 2, मिन्टो रोड, इलाहाबाद	
मूल्य :	5/रू. मात्र
द्वितीय संस्करण	2010
प्रकाशक : ईशान प्रकाशन, मीठनपुरा, क्लब रोड, रमना, मुजफ्फरपुर-842002	
प्राप्ति स्थान : 36, आफीसर्स फ्लैट्स, जुबली रोड, नार्दर्न टाउन, जमशेदपुर-831001	
मुद्रक : सनफ्लावर प्रिंटर्स, 8, मुस्लिम लाईब्रेरी बिस्टुपुर, जमशेदपुर-831001	
मूल्य :	100 रू. मात्र

O PRATIKSHIT Rs. 100/- only

A Collection of Poems by Shanti Suman

पति को,

साथ जिये गीतिल क्षणों के लिए

संकेत

		पृष्ठ
१.	पास मेरे शेष रहे	३१
२.	तुम्ही कहो	३२
३.	तन धीरे हुआ कास-वन	३३
४.	कहाँ-कहाँ भटके मन और	३४
५.	वह भी होना था	३५
६.	क्या हो तुम?	३६
७.	नयन नम हो गये होंगे	३७
८.	वहीं एक खुशबू हँसी	३८
९.	क्या दे डालूँ तुम्हें	३९
१०.	एक और क्षण	४०
११.	ऐसे में बाँसुरी बजाओ पिया	४१
१२.	साथ साथ चला किये	४३
१३.	द्वार तेरे, द्वार मेरे	४४
१४.	मेघ जहाँ तक घिरे	४५
१५.	ये शिकायतें, ये उलाहने	४६
१६.	रही खटकाती सपन के द्वार	४७
१७.	मेरे तो थे...	४८
१८.	कास के सफेद फूल	४९
१९.	रोएँदार कुहासे	५०
२०.	नये संदर्भों को जोड़ दिया	५१
२१.	कुछ देर यों ही....	५२
२२.	यह शहर	५३
२३.	हम चल रहे जुलूस में	५५
२४.	हर शाम, हर सुबह	५६
२५.	अपने इषत का हर क्षण	५७
२६.	जितना-जितना भटकाया मन	५८

२७.	कहाँ भुला दूँ	५९
२८.	वही एकरस बात	६०
२९.	पढ़ने को दिये कई आखर	६१
३०.	अजाने आ गई डोर	६२
३१.	एक विराट हिमालय	६३
३२.	आँच दहके भी कैसे	६४
३३.	याद तेरी गुलमुहर के फूल	६५
३४.	नील जामुनी साँझ	६६
३५.	कँचनारी छाँह बीच	६७
३६.	रेंगता दिन, ऊँघती शाम	६८
३७.	खिड़की के पल्ले खुले	६९
३८.	होना इस पहर का	७०
३९.	फिर फैली जाती....	७१
४०.	रहे या न रहे कल यह बात	७२
४१.	जो कुछ तुमने दिया	७३
४२.	चंदन की अधरतिया	७५
४३.	होने दे ओ रे मितबा	७६
४४.	गरम हथेली...	७७
४५.	शरबती हवायें	७८
४६.	राग के रंग की यह घटा	७९
४७.	धरती आकाश में	८०
४८.	ऐसी न मैं थी	८१
४९.	और बहुत हैं मेरे जैसे	८३
५०.	फिर-फिर खड़ी देखना	८५
५१.	बोलो तो सीधे से	८७
५२.	अब नहीं लगता कहीं भी मन	८८
५३.	मन का पीरों से भर जाना	८९
५४.	दो राहों के बीच	९०
५५.	राह अपनी ही चलें हम	९१

५६.	दूर-दूर चलती तो मैं हूँ	९३
५७.	माथे पर तुमने रख दिये फूल	९४
५८.	तन किसी का, मन किसी की	९५
५९.	समय मेरे द्वार पर	९६
६०.	आओ दो क्षण खुलें	९७
६१.	फँसी नहीं मछली	९८
६२.	दुख में क्यों आते वे...	९९
६३.	रूठते वादे	१००
६४.	तोड़ दूँ कैसे खड़ी जो	१०१
६५.	खिड़की की बीमार हवा	१०२
६६.	पँखुरियों के मेघ	१०३
६७.	डूबते दिन सा	१०४
६८.	लाज उमड़ घिरेगी	१०५
६९.	मन कैसा लगे	१०७
७०.	कृत्रिम समझौते	१०८
७१.	सुधियों की भँवर	१०९
७२.	फिर तुमने दुहराये	११०
७३.	क्रोशिया काढ़े दिन	१११
७४.	जब से बढ़ा व्यापार	११२
७५.	स्थितियों के टूटे दर्पण	११३
७६.	यह अपनापा	११४
७७.	सहजन की डाल	११५
७८.	अस्थिर मन सुनता	११७
७९.	प्रतीक्षा के सौ स्थल कमल	११८

पुरोवचन के वहाने

स्वयमेव बोलते हुए, कभी कुछ, कभी बहुत कुछ कहते हुए इन नवगीतों की प्रस्तुति किसी संस्तुति के कारण नहीं है। मेरे ये नवगीत जो स्व की सीमा लाँघकर पर को अपने परिप्रेक्ष्य में समाहित करने जा रहे हैं, इनके नए रूप एवं स्वर-गंध का कलात्मक परीक्षण आप स्वयं करेंगे। इसलिये इनके सम्बन्ध में वक्तव्य के रूप में कवि कुछ कहे, हरदम ठीक नहीं। फिर भी आधुनिक युग-जीवन की जटिलताओं के बीच खण्डित व्यक्तित्व, टूटे कुटुम्ब एवं तन-मन के प्रकारान्तर के संदर्भ में आत्म-स्वीकारोक्ति सम्प्रेष्य हो जाती है। मेरे कुछ कहने की बाध्यता भी वही है।

मैंने मुख्यतः गीत-रचना की है -- नवगीत की रचना। आधुनिक गीतों के साथ नवता का प्रयोग ऐतिहासिक परिपेक्ष्य की अपेक्षा तन्त्र की भंगिमा से संबद्ध है। नयी कविता के समानान्तर ही मुझे नवगीत की स्थापना में आस्था है तथा नयी कविता की भाँति गीतों में भी नूतन दृष्टि एवं भाव-बोध के अपनाए जाने के पक्ष में हूँ। नवगीत के वर्तमानकालीन प्रशस्त परिवेश में आज के जीवन की यथार्थ गतिविधियाँ सम्पूर्ण समस्याओं के साथ अभिव्यंजित हो रही हैं -- मुझे ऐसा ही लगता है। गीत कभी भी एक खण्डित अनुभूति नहीं है और न ही एक क्षण का अपूर्ण संवेदन। मैंने जितना जाना है -- गीत भोगे गए क्षण की सम्पूर्ण अनुभूति है और है साफ-सुथरा, भरा-पूरा एक सम्पूर्ण बिम्ब। कवि के आत्मिक तोष से उसका सम्बन्ध है। जिन गीतों में जीवन का स्पन्दन होगा, वह निस्संदेह अतीन्द्रिय उलझनों से मुक्त होगा। नवगीत में सस्ती भावुकता की जगह व्यापक मानव-बोध आँका गया है। इसलिए इसकी अहमियत को बनाए रखने के लिये अनुभूति की पारदर्शिता को अक्षुण्ण रखा गया है। दिल और दिमाग के बीच बढ़ती हुई दूरी, मशीनी जिन्दगी की गद्यात्मकता के बीच नवगीत व्यापक संघर्ष की भूमिका निभा रहा है। वह जहाँ एक ओर निर्मम मानव-स्थिति का साक्षात्कार करता है, वहीं दूसरी ओर अभिव्यक्ति के खतरों को भी समझ रहा है। नयी संवेदनाओं को स्वानुभूति के रूप में व्यंजित करना हरदम आसान नहीं होता। नवगीत इन खतरों से बचकर चलना जानता है।

यह आज की जीवन-व्यवस्था का दोष है कि आज आदमी समस्याओं से बचकर जीना चाहता है। वह अधिकाधिक सुविधाओं का उपभोग करना चाहता है। राजनीति के समान आज की जिन्दगी भी बंद, घेराव, प्रदर्शन, फाइलों आदि में अपनी नियति निहार रही है। असंतोष, क्षोभ, घुटन, ऊब, कुण्ठा ही आज के परिवेश में बहुत अर्थ रखते हैं। इसलिए, नवगीत आज एक विवशता के रूप में फूट रहा है जो नितांत आन्तरिक एवं निजी है। हल्की-फुल्की मनःस्थितियों से लेकर जीवन के व्यापक संघर्षों को उठाकर नवगीत उनमें एक नया अर्थ भरता है। हम कभी-कभी ऐसी रंगहीन स्थितियों से गुजरते हैं जो हमारी नियति होती है। हम चाहकर भी उनसे पलायन नहीं कर सकते। हर क्षण हम आंतरिक दंश का अनुभव करते रहते हैं। हमारा मन प्रश्नों और सन्देहों के बीच उबलता रहता है। नवगीत में इन सारी स्थितियों के संस्पर्श विद्यमान हैं।

मेरे प्रशंसकों की दृष्टि में हो सकता है साहित्य की धरती पर मेरी वैसाखी पूरी तरह टिकी नहीं हो, फिर भी अपनी-अपनी समझदारी तो होती ही है और इसी के आधार पर मैं कह सकती हूँ कि मेरे ये गीत भाव-भींगे क्षणों के, हल्के-फुल्के और भारी-भरकम क्षणों के गीत किसी सुग्गे के लिए सेमल के फूल नहीं हैं। इनमें मध्यवर्गीय भाव-चेतनाओं का उतार-चढ़ाव आपको यत्र-तत्र मिलेगा और धरती की बातों से धरती की गंध मिलते ही आप यह महसूस करेंगे कि इन गीतों में कुछ है जो आपको बार-बार छू जाता है। इस छुवन के पीछे इन नवगीतों में न केवल मध्यवर्गीय ऊब, कुण्ठा, घुटन, पीड़ा, विवशता एवं शैथिल्य है अपितु हृदय का असामंजस्य, व्यवहार एवं आदर्श का वैषम्य एवं टुकड़े-टुकड़े होकर बँटे व्यक्ति के बाहरी दबाव भी हैं। इन गीतों में कहीं-कहीं आपको बिखराव भी मिलेगा। यह बिखराव आधुनिक युग की ही एक स्थिति है। यह नया यथार्थ है जिसे मध्ययुगीन परम्पराओं से आक्रान्त रूमानी काव्य-दृष्टि वाले नवगीतकारों के अग्रज कवि अपना न सके थे। परिस्थितियों के साथ बरबस समझौता करने की जो मजबूरी मेरे जीवन में है, मेरे गीतों में भी आप उसको पायेंगे। मेरी ईमानदारी वह है जो किसी भी गीतकार की हो सकती है कि मैं नए यथार्थ से संपृक्त होकर गीत लिखती हूँ -- गीत जो हमारी चेतना का गवाक्ष खोलकर एक अपरूप दिव्यता, एक बदसूरत नंगापन का भी दिग्दर्शन कराता है। रूपाकार की दृष्टि से ऋजु लगनेवाले ये गीत भीतर से बड़े गंभीर हैं। यह बात दूसरी है कि गंभीरता एक सहजता की आसंगिनी बनकर आई है। आवेष्ठन की गंभीरता एवं जटिलता को स्वीकार

करके भी मैं गीत में साधना की उसी सहजता की पक्षपाती हूँ। छन्द, लय, गति, बिम्ब, प्रतीक, उपमानों के मेले में नयी कविता के भाव कहीं-कहीं एकदम खो गए हैं। मेरे भी भाव इनके मेले में भटक न जाएँ, मैं इसकी चिंता भरसक रखती हूँ। इस परम्परा में डा० रवीन्द्र भ्रमर, रामदरश मिश्र, ठाकुर प्रसाद सिंह, उमाकांत मालवीय, ओमप्रभाकर, देवेन्द्र कुमार आदि नवगीतकारों के प्रति मेरी निष्ठा है एवं इनकी भावभूमियों के समानान्तर ही मेरी भावभूमि भी आधुनिक समस्त आर्थिक, मानसिक क्लेशों को भोगती है।

मन ही ऐसा मिला है कि अवसाद का एक घना कुहासा इर्द-गिर्द व्यापा ही रहता है। व्यस्तताओं और परेशानियों से अक्सर मन उदस जाता है, पर संस्कारातः सोचना ही पड़ता है कि परेशानियाँ ही तो हमारी सहयोगिनी हैं। जब वे न होंगी, तब हम क्या करेंगे? जीवन में किसी प्रकार का सामान्य अभाव नहीं, किन्तु न जानें क्यों ऐसा लगता है कि सुख के क्षण क्षेपक या फुटनोट की तरह ही आते हैं। कुण्ठाओं को लिखा-पढ़ा बहुत, पर अब जाना है कि उनका अपना रचनात्मक पक्ष भी है। शर्त यह है कि वे पक जाएँ... धीरज के साथ और फिर उन्हें नयी अर्थवत्ता प्राप्त हो। फिर तो कुण्ठित सिद्धार्थ का बुद्ध रूप में प्रतिफलन एक अनिवार्यता बन जाती है। आवश्यकता है, अपने आप में दुर्दमनीय जिजीविषा को जाग्रतकर उसे अपराजेय बना देने की। एकांत निजता का मोह वहन कर भी सदैव ऐसा ही हुआ कि निजी दुख-दर्द को भीतर दफनकर पुलक के गीत ही गाई, पर बर्फ के ओठों पर एक रक्तरेखा की तरह नैराश्य का भाव मुखर ही रहा। यह जैसे भी रहा.... मगर अनजाने। मानसिक संघर्ष जो मेरे जीवन का सच है, मेरे गीतों का भी सच बनते-बनते जाने क्या हो गया है।

आज बदलते हुए मूल्यों के युग में कवि की कठिनाइयाँ बहुत हैं और अपनी सही दिशा जानकर उस पर अग्रसरित होने के लिए मध्यवर्गीय कवि को बुद्धि का पल्ला पकड़ना ही पड़ता है और शायद गीतों में भी जो एक प्रकार की अस्पष्टता बनाम दुरूहता आती जा रही है, उसका भी मूल कारण यही है। कम से कम गीत के लिये तो यह शुभ लक्षण है कि नयी कविता में जिस प्रकार आत्मरति, मृत्यु-प्रेम और संकेतों से स्वप्न-पूर्ति करने की आदत के कारण घोर अनिश्चय के भाव स्पष्ट हो गए हैं, गीत में ये तत्त्व अभी अस्पृश्य हैं।

नवगीत भाषा की एक नयी व्यवस्था, नयी टेकनीक का परिचायक है। अतएव भाषा के प्रति भी मेरा एक दृष्टि-विन्दु है। जनभाषा या बोलचाल की भाषा काव्य की संगिनी बने, पर ऐसी नहीं की धारणा की गरिमा को ही खो दिया जाए। छन्द, रचना के सम्बन्ध में नये प्रयोग अपनाने ही चाहिए। गीत में पाए जाने वाले कल्पना-चित्र या बिम्ब बच्चों के से निरे शाब्दिक न हों और न नवजात शिशु की तरह संभल-संभल कर रखे गए हों, वरन् वे भी सहाभियोजित हों। कवि-सम्मेलनों में जिन गीतों को पढ़कर या गाकर अकस्मात् ख्याति-लाभ किया जाता है, नवगीत जो संपूर्ण गीत-परम्परा का रिक्थ प्राप्तकर फूला-फला है... इस गीत-विद्या का मूल्यांकन उन गीतों से नहीं हो सकता। इसके मानदंड वे गीत ही हो सकते हैं जो भाव और भाषा दोनों ही दृष्टियों से परिनिष्ठित एवं सन्तुलित हैं। इस प्रकार के गीत यद्यपि नयी कविता की तुलना में कम ही हैं, पर जो भी हैं, उनका अपना अस्तित्व है और किसी भी साहित्यिक विधा के संख्याबोध को उससे उत्तर मिल सकता है। अब नवगीत आन्दोलन का नहीं, अपितु मूल्यांकन एवं प्रत्यालोचन के उस प्रखर मध्याह्न से गुजर रहे हैं जहाँ वस्तुस्थिति की ऊष्मा एवं महिमा के साथ आधुनिक युगबोध भी हैं और अनुभूतियों का व्यापन भी।

अपने गीतों के लिए वैसे कहना भी क्या था। नवगीत पर सामान्यतः जो कह गई, वही मूल है। आत्मवक्तव्य के रूप में जो भी कहा गया, उसको पुरोवचन समझिए या भूमिका ही।

सम्प्रति इतना ही,

शान्ति सुमन

धूप के कपड़े पहने दिन

'ओ प्रतीक्षित' मेरा पहला नवगीत-संग्रह है। यह 1970 ई. में लहर प्रकाशन, 2, मिन्टो रोड, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था। गीत-संग्रह के पहले प्रकाशन की खुशी करविल के आज-अभी खिले पहले फूल की तरह सुगंधित थी। उसका गुलाबी रंग मेरी ताजा रचनात्मक उमंग से मिलता था। मेरी वह रचनात्मक अनुभूति मेरी आँखों के आगे उस सौन्दय-लोक को पहनकर उत्र आई थी जिसकी प्रतीक्षा मैंने बहुत वर्षों से की थी। उन दिनों छोटा लगभग कस्बानुमा शहर मुजफ्फरपुर में मुझ जैसी असुविधाजनक यथार्थ को जीनेवाली जो अनुभव की पहली सीढ़ी पर ही पाँव रखने जा रही थी – की आँखों में उतरा रचना-प्रकाशन का वह सुख अद्‌भुत् था। आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री के अनेक गीत-संग्रह प्रकाशित हुए थे और राजेन्द्र प्रसाद सिंह के अतिरिक्त शहर में ही नहीं बिहार में किसी अन्य नवगीतकार का संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ था। इसलिए कुछ आलोचकों और अग्रज नवगीतकारों ने नवगीत के फलक पर मेरी उपस्थिति को एक घटना माना था। मुझको भी आज वह एक घटना ही लग रही है क्योंकि तब गाँव से शहर आये चौदह वर्ष भी नहीं हुए थे, शहर का रंग भी मुझपर पूरा उतर नहीं पाया था और मेरी आँखों में, मन में, जिद में अपने नवगीतों को संग्रह के रूप में प्रकाशित करने की लालसायें साँसें लेने लगी थीं। घर का अवलम्ब और संबंधों के अनुबंध को तभी मैंने जाना था। मेरी उस स्वप्नाकांक्षा को पूरा करने में मेरे पति की भूमिका अनन्य थी।

इस पहले नवगीत–संग्रह का नाम 'ओ प्रतीक्षित' रखकर मैंने उन कई नामों से शब्द, अर्थ, ध्वनि, लय, छन्द लेकर इसमें मिला दिया जो बार–बार मेरे मन, मेरी रचना-प्रक्रिया के क्षण में विम्बित हुए थे। पहलीबार 'ओ प्रतीक्षित' के प्रकाशन पर इसकी लोकार्पण–गोष्ठी हुई थी जिसमें डॉ. श्यामनंदन किशोर अध्यक्ष थे। उनके अतिरिक्त राजेन्द्र प्रसाद सिंह, उमाकान्त मालवीय, पंकज सिंह, भगवतीशरण मिश्र, मुक्त, सत्यनारायण श्रीवास्तव तथा शहर के अन्य रचनाकार उस लोकार्पण के साक्षी बने। सुहृद संघ में उस अवसर पर जो छोटा समारोह हुआ उसकी उत्सवधर्मी उपस्थिति आज भी

संवेदना में बसी हुई है। 'ओ प्रतीक्षित' के बाद मेरे किसी दूसरे नवगीत संग्रह या जनवादी गीत संग्रह पर लोकार्पण गोष्ठी नहीं हुई। नहीं हुई इसलिये कि मैंने चाहा नहीं। उनदिनों वह या तो शुभकामना-गोष्ठी बनकर रहजाती थी अथवा एकपक्षीय समीक्षागोष्ठी। रचनाओं का निहितार्थ अथवा उसका सच उतर नहीं पाता था।

मेरा जन्म और फिर जन्म के बाद की घटनायें, प्रारम्भिक शिक्षा और फिर अपना गाँव मिलाकर दस-बारह गाँवों में पहली बार मेरा मैट्रिक पास करना, वह भी प्रथम श्रेणी में पास करना, फिर विवाह, विवाहोपरान्त एम.ए. तक की पढ़ाई, फिर पी.एच.डी की प्राप्ति, कालेज में व्याख्याता के पद पर नियुक्ति, घर-परिवार की जिम्मेदारी और उसके साथ रचना–कर्म– सब –मिलकर मेरे जीवन के ताने–बाने बुन रहे थे। जीवन के इस मोड़ पर खड़ी होकर जब अपना अतीत, अपने बचपन को देखती हूँ तो वह किसी मूर्तिकार की उस अनगढ़ मूर्ति की तरह दिखता है जिसको जगह-जगह से तराशकर छोड़ दिया गया हो। सहज और अचिंतित सुन्दरता ही जिसका वैभव हो। उन दिनों के निम्न मध्यवर्गीय परिवार के बच्चों से कई अर्थों में समानता के बावजूद मेरे बचपन में कुछ वैसा था जो मुझको दूसरे बच्चों से अलग करता था। संगीत की किसी आहट और गहरे आर्त्तनाद की तरह आज भी उसकी अनुगूँज सुनाई पड़ती है।

मिट्टी की भीत पर फूस की छानों से बने छोटे-बड़े घरों वाला मेरा गाँव तब जितना सुन्दर लगता था, आज नहीं लगता। तब एक सीधी पगडंडी भी मेरे गाँव से होकर नहीं गुजरती थी। मेड़-मेड़ या बीच खेत से ही होकर लोग जाते थे – स्टेशन या बाजार या विवाह के अवसर पर बाराती लेकर भी। तब बैलगाड़ी के सिवा आवागमन की कोई दूसरी सुविधा नहीं थी। उन्हीं दिनों गाँव में 'लीक' बनना शुरू हुआ था।

मेरे दादा स्वर्गीय बलदेव लाल दास एक गंभीर धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। मेरे पिता श्री भवनन्दन लाल दास जिनको लोग कुँवर जी कहते रहे और जो अब श्री कुँवर बाबा के नाम से सुख्यात हैं, के अतिरिक्त एक पुत्री श्रीमती फूल देवी के जन्म के बाद दादा अल्पायु में ही दिवंगत हो गये। इसलिए मेरे पिता का लालन-पालन और शिक्षा कार्य सभी उनके काका स्वर्गीय प्रीतमलाल दास की छत्र-छाया में संपन्न हुआ। उनको ही हमलोग

दादा के रूप में जानते रहे और भरपूर ममत्व पाते रहे। उन्होंने अपने अंत समय में मेरे पिता को ही घर का स्वामित्व दिया और मेरे बचपन के शुरू के दिनों में एक अवलम्ब भी।

मेरे जन्म के पूर्व मेरी माँ ने एक पुत्र को जन्म दिया। तब मेरे पिता डिफेन्स में नौकरी करते थे। वैसे भी मेरा घर गाँव में 'मालिक' का घर था और अब तो पैसे की भी कोई कमी नहीं थी। दादाजी ने उस शिशु के जन्म पर उत्सव मनाया। घर से निकलकर खुशियाँ पूरे गाँव तक गईं, पर दुर्भाग्यवश वह शिशु जीवित नहीं रहा। उसके बाद एक लम्बा सन्नाटा मेरे परिवार में फैल गया। खुशियों की गवाही देते क्षण दुखों से भर गये। दो वर्ष बीत जाने के बाद जब मेरी माँ को दूसरी संतान नहीं हुई तो मेरी दादी ने वे सब उपाय करने शुरू कर दिये जो उन दिनों सन्तान की प्राप्ति के लिए प्रचलित थे। मेरी दादी जिनका दो बच्चों के बाद ही सुहाग का सुख खो गया था, एक अत्यंत सन्त स्वभाव की धर्मप्राण स्त्री थीं। अपने गाँव के मंदिर के अतिरिक्त निकट के गाँवों के मंदिरों में जा-जाकर उन्होंने पूजा-अर्चना की, पीर के मजारों पर भी मन्नत मांगने गईं। उन्होंने घर की कुलदेवी भद्रकाली और बाहर के काली मंदिरों में बलि देने को भी कबूला। यहाँ तक कि उन्होंने गंगाजी में धान की 'जूटी' और अन्य पूजन सामग्रियों को समर्पित करने का भी संकल्प किया। इन सारी घटनाओं और स्थितियों को मैंने अपने जीवन में घटित होते हुए देखा। मेरी दादी ने न जाने कितने तीर्थ-व्रत किये। मैंने अपनी छोटी आयु से ही लोगों के मुँह से उनकी बेचैनियों की कथाएँ सुनीं।

इतने देवी-देवताओं को मनाने के बाद मेरा जन्म हुआ था। इसलिए घर में मुझको बहुत लाड़-प्यार मिला। मेरे जरा सा रोने पर ही दादी घर को सिर पर उठा लेती थीं। फुआ ने मुझको बताया कि जन्म के बाद कितने ही दिनों तक उन्होंने मुझको गोद से नीचे नहीं उतारा। उनको लगता था कि नीचे उतार देने पर पहले शिशु की तरह यह भी नहीं बचेगी। मेरे पिता ने अपनी डायरी में लिखा था – 'माई वाइफ गेभ बर्थ टू ए ब्यूटीफूल डौटर।' उन्होंने प्रकट में मुझको गोद में लेकर दुलार नहीं किया, परन्तु अपनी डायरी में मेरे लिए अपने मन का प्यार लिख दिया था। बड़े होने पर मैंने डायरी का वह पन्ना पढ़ा था।

मेरे जन्म के बाद मेरी माँ को एक-एक कर तीन पुत्रों को जन्म देने का सौभाग्य मिला। इससे पूरे घर में लाड़-प्यार के साथ मेरे लिए मान-सम्मान भी बढ़ गया था। माना जाता था कि मेरा आना इतना शुभ हुआ कि माँ को तीन बेटे प्राप्त हुए। दादी मुझको अपने घर की लक्ष्मी मानती थीं। ऐसा होता था कि किसी एक क्षण में अपने-अपने कारणों से बच्चे रोते थे तो दादी सबसे पहले मुझको उठाकर गले से लगाती थीं। मुझको चुप कराती हुई वह कभी-कभी आंगन से दालान पर भी चली जाती थीं अैर मेरे भाई उसी तरह रोते रह जाते थे। फिर माँ काम समाप्त कर या बीच में छोड़कर ही बच्चों को चुप कराती थीं। मेरी दादी खुशियों से भर जाती थीं कि मैं मान गई हूँ या चुप हो गई हूँ।

उन दिनों समाज में बेटियों की अपेक्षा बेटों का मान अधिक था। पर मेरे घर में यह अद्‌भुत बात थी कि मेरी जगह सबसे ऊपर थी। मेरे मन के विरूद्ध कोई मुझसे कुछ भी नहीं करा सकता था। मैं चाहे जिसको मारूँ पर कोई मुझको नहीं मारता था। दादी ने घर में मेरे लिए अभयारण्य बना रखा था। मेरी किसी शिकायत पर वह दूसरे बच्चों को बहुत डाँट देती थीं। इस तरह मेरे भीतर स्वाभिमान के साथ जिद भी शामिल हो गई थी। एक बार माँ ने कहा था – 'चल बेरहट खा ले।' उन्होंने मुझको भुने हुए चूड़े और हरे मटर के दाने दिये। मैंने चूड़ा और मटर से भरी कटोरी को पलक झपकते हुए आँगन में फेंक दिया और जोर–जोर से रोने लगी। माँ ने तो 'बेरहट' खाने के लिए कहा था – फिर चूड़ा और मटर क्यों दिया। मैं घंटा भर रोती रही। सारे बच्चे मेरे लिए रूआँसे होते रहे। फिर दादी ने मुझको समझाया कि अबेर के जलपान को मैथिली में 'बेरहट' कहते हैं। जो खाने को दिया जाए वही बेरहट है। मुझको आज भी लगता है कि मैं उस समय उत्तर से सहमत नहीं हुई थी।

हमारा घर निम्न मध्यवर्गीय किसान परिवार का घर था। काफी अन्न उपजता था। मैं देखती थी कि तेल-नमक आदि घरेलू चीजें लोग अनाज देकर ही खरीदते थे और आम के मौसम में आम देकर। एक बार कान का इयरिंग मैंने 'बकोलिया' से एक आम देकर लिया था। काँच का नहीं था वह, पता नहीं शायद प्लास्टिक का था।

सरस्वती पूजा के दिन मुझको अपने एक भाई के साथ 'भट्ठा'

छुआया गया। मास्टर जी को पीली धोती और दक्षिणा दी गई थी। उन्होंने उसके बाद 'ओ-ना-मा-सी' लिखकर दिया और अभ्यास करने के लिए कहा था। फिर तो बाँस के फट्टे से बनी बेंच वाले अपने गाँव के स्कूल में ही मैंने पढ़ने जाना शुरू किया। मास्टर जी बहुत गुस्सा वाले थे, पर मुझको डाँटने की हिम्मत उनको कभी नहीं हुई। बीच में वे किसी बच्चा को वर्ग से निकलने नहीं देते थे, पर मैं जब चाहूँ निकल जाती थी। एक बार मेरी दोस्त सुधा का कान उन्होंने ऐंठ दिया था और एक लड़के को बाँस की 'करची' से मारा था। मैंने घर आकर कह दिया था कि यह मास्टर जब तक रहेगा, मैं स्कूल नहीं जाऊँगी और मास्टर बदल गये थे।

गाँव में तब पहली बार घर में 'सनलाइट' साबुन आया था। बाबूजी ने मंगाया था। मैंने जिज्ञासा में चुपचाप उसको पानी भरी बाल्टी में डाल दिया। कुछ घंटे के बाद वह आधा से अधिक गल गया। बाबूजी ने जब पूछा कि साबुन कहाँ है तो मेरे भीतर का भय जागा। मैं चुपचाप निर्दोष की मुद्रा में दादी के साथ आगे-पीछे करने लगी। सबने कहा – किसी बच्चा का काम है और फिर सारे बच्चों को कसकर डाँट पड़ी, कितने को थप्पड़ भी जड़ दिए गए। रात में दादी ने पूछा – 'बाबू तू फेकने रही' – मैं कसकर उनकी देह से लग गई।

मैं बच्चों की लीडर थी। कोई मेरा बस्ता ढोता था, कोई मेरी नयी कॉपी को माथे पर लेकर चलता था। कीचड़ में चलने पर पाँव को धोने के लिए कोई दौड़कर पानी लाता था। इसके बदले में मैं उनको रक्षात्मक सहयोग देती थी। कोई 'लिखना' (हैण्डराइटिंग) लिखकर नहीं ले जाता था और माास्टरजी की छड़ी उठ जाती तो मैं बोल देती कि इसकी कॉपी मेरे पास रह गई थी। मैं पढ़ने में बहुत तेज थी। मगर मास्टर जी की क्रूरता से सदैव दूर रहना चाहती थी। शाम को मेरे बाबूजी के फुफेरे भाई जो हमारे यहाँ ही रहते थे, हमलोगों को पढ़ाते थे। उनका भी हाथ छूटा हुआ था। कोई बात हुई कि गाल पर थप्पड़ लगा देते थे। दादी जब पाँव दबाने के लिए उनको किसी बच्चे को भेजने के लिए कहती थी तो मैं उस काम को करने के बहाने वहाँ से भाग आती थी। वेसे दादी नहीं चाहती थी कि मैं पैर दबाऊँ क्योंकि उनकी दृष्टि में मैं कोमल थी और मुझको वह काम करने नहीं आता था।

जमालपुर से मेरे पिता की बदली इलाहाबाद हो गयी। दादी ने मुझको माँ–बाबूजी के साथ नहीं जाने दिया। मैं गाँव में उनके साथ रही। उन दिनों मेरा परिवार संयुक्त था। मेरे गाँव के गरीब लोग मेरे घर से बहुत सहयोग पाते थे। शायद इसलिए मेरे घर को वे बड़ी हवेली कहते थे।

बहुत छोटी उम्र में ही मैंने संयुक्त परिवार के गुण-दोषों को देखना और समझना शुरू कर दिया था। धीरे-धीरे पहले के प्रेम और सौमनस्य का टूटना-बिखरना शुरू हो गया था। मेरे दादा के मुंशी या उनके काम-काज में सहयोग करने वाले 'दीवानजी' के देहान्त के बाद उनकी पत्नी अपने दो बेटों के साथ हमारे यहाँ ही रहती थी। उस पूरे परिवार का जलपान-भोजन बनाने से लेकर सारे टहल-टिकोरे वही करती थी। अपनी उस छोटी उम्र में ही मैंने उनके दुख और शोषण को महसूस किया था। वह सदैव सूर्यास्त के समय नहाकर सूर्य को जल देती थी। मैंने अपने अबोधपन में उनसे एक दिन पूछा कि वे शाम के समय किसको पानी देती हैं। उन्होंने बताया कि उनके 'करम' में यही लिखा है कि वे डूबते हुए सूर्य को ही पानी दें तो वे क्या करें। मैंने उनकी आँखों से बहते हुए आँसुओं को भी देखा। मैं समझ नहीं पाई कि मुझसे क्या गलती हुई। आज उसका पूरा संदर्भ और अर्थ जान गई हूँ।

मेरे बाबूजी ने अपनी हैसियत बढ़ाने के लिए गाँव और आसपास की बिकती हुई जमीन को खरीदना शुरू किया। उस क्रम में उन्होंने मेरी माँ के सारे गहने भी ले लिये। घर में किसी से कुछ नहीं लिया। मेरी माँ बहुत कम बोलती थी। उसका बाबूजी से कभी विरोध नहीं हुआ। एक बार तो बाबूजी ने मेरे पाँव से रूनझुन बोलते चांदी के कड़े भी उतार लिए। बीघा भर के अपने आंगन में मैं लोट-लोटकर रोई। दादी ने मुझको कितना मनाया। माँ ने मुझको कुछ नहीं कहा। मैं उसका दुख तब नहीं जान पाई। आज बेहतर जान रही हूँ। दादी ने इतना कहा कि पत्नी-बच्ची को सूनाकर जमीन खरीद रहे हो। क्या होगा उसका? घर का जब बँटवारा हुआ तो उनमें से कोई जमीन बाबूजी को नहीं मिली। मेरे मन पर आज भी उस और उस जैसी अनेक घटनाओं के निशान बाकी हैं।

बच्चा काका ने मैट्रिक फार्म भरने में मेरी जन्मतिथि शरत पूर्णिमा 1942 लिखा दी थी। मेरी फुआ ने बाद में मुझको बताया कि मेरा जन्म अनन्त चतुर्दशी को हुआ था। घर में अनन्त भगवान की पूजा हुई थी। सबकी बाँह

पर डोरे बँधे थे। वह 1944 का सितम्बर मास रहा होगा। तब देश में आजादी के संघर्ष चल रहे थे। काफी उथल-पुथल थी। हुआ यह कि शिक्षा और आजीविका में मेरी जन्मतिथि सितम्बर 1944 रही और रचना-कर्म में वह शरत पूर्णिमा 1942 हो गई। यह बचपन की भावुकता है जिससे मैं अलग नहीं हो सकी। बचपन कभी समाप्त नहीं होता। आज जो भी हूँ उसमें मेरे बचपन का अनुदान ही अधिक है। सामाजिक सरोकार की संवेदनायें मुझमें उन्हीं दिनों जगीं। मैं जितनी सुविधाओं में पली, मेरा मन असुविधाओं का उतना ही साक्षी बना। मेरे गीतों की पृष्ठभूमि में आज भी मेरे बचपन की ये संवेदनायें शामिल हैं। एक किसान परिवार में जन्म लेकर मैंने जैसा जीवन जिया, जिस माहौल ने मेरे अंदर की दुनिया को रंग-रूप दिया उसकी छाप आज भी महसूस करती हूँ।

प्रारंभ में ही गीत और कविता को पढ़ते हुए सहज ही समझ में आ गया था कि गीत-रचना कविता-लेखन की तरह आसान नहीं है। प्रत्येक कवि गीतकार नहीं हो सकता। गीतकार मुक्तछंद की कविता लिखता भी है। गीत के प्रति कोमल संवेदना और अन्य सामाजिक लगावों की तरह गीत से भी लगाव की बात समझ में आने लगी थी। मेरी गीत यात्रा की शुरूआत बचपन में ही हुई। 1960 के बाद उसको स्तरीय और स्थायी संयोग मिला।

तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक और साहित्यिक परिस्थितियों के दबाव ने जिस गीत चेतना को जन्म दिया उसको ही नवगीत की संज्ञा से अभिहित किया गया। इसको किसीने काव्यान्दोलन कहा, किसी ने उसको स्वतःस्फूर्त्त विधा के रूप में जाना। कुछ लोगों ने उसको नयी कविता का पूरक कहकर उसकी स्वतंत्र सत्ता एवं अस्मिता पर प्रश्नचिहन लगाया। कुछ ऐसे भी लोगों का वर्ग था जिसने नवगीत को तत्कालीन मंचों से लगातार स्तरीयता को खोते जाते और ऊबाऊ होते चले जानेवाले गीतों की प्रतिक्रिया में लिखा जानेवाला गीत कहा। मैंने नवगीत को गीत की विकास-यात्रा की अनिवार्य परिणति के रूप में देखा। इसके साक्ष्य मेरे द्वारा सम्पादित-प्रकाशित पत्रिका – 'अन्यथा' में प्रकाशित मेरा आलेख तथा डॉ. देवी प्रसाद कुँवर द्वारा आयोजित और 'धर्मयुग' में प्रकाशित परिचर्चा में सम्मिलित मेरे विचार हैं। उस परिचर्चा में डॉ. शम्भुनाथ सिंह, उमाकांत मालवीय, ओम प्रभाकर, माहेश्वर तिवारी, बुद्धिनाथ मिश्र तथा मेरे विचार शामिल हैं।

मेरी रचना-प्रक्रिया पर मेरी रचना-दृष्टि सदैव प्रभावी रही है। मैं मानती हूँ कि किसी भी कला-संस्कृति का मूलाधार समाजार्थिक व्यवस्था होती है। मूलाधार में हुए परिवर्त्तन का प्रभाव कला-संस्कृति पर देखा जा सकता है। समाज-व्यवस्था में परिलक्षित परिवर्त्तनों का दबाव मेरे नवगीतों पर भी पड़ा है। '60 के बाद नवगीत रचना में बढ़ी मेरी प्रवृत्ति सायास नहीं थी। अन्तर्वस्तु और रूप की द्वन्द्वात्मक एकता के कारण ही ऐसा हुआ। निराला की 'जुही की कली', 'वह तोड़ती पत्थर' जैसी रचनायें हों या उमाकांत मालवीय, रमेशरंजक, नरेश सक्सेना, नचिकेता, रामचंद्र चंद्रभूषण, माहेश्वर तिवारी, बुद्धिनाथ मिश्र, यश मालवीय आदि के गीत सबमें इसको देखा जा सकता है। मैंने भी समाज-व्यवस्था में आनेवाले परिवर्त्तनों को महसूस कर सामाजिक यथार्थ के साथ गीतों की संवेदना को जोड़कर देखा कि तपते हुए कचनारों की पाँतों में जीवन के अच्छे-भले दिन भी तपने लगे हैं। नवगीत में सामाजिक संवेदना यहीं से आई।

कवितावादियों ने छंद के विरोध में अभियान चलाया, गीत का विरोध भी हुआ। परन्तु यह विवादास्पद नहीं है कि छंद-मुक्ति की अवस्था में कविता में गद्यात्मकता का खतरा बढ़ जाता है। छन्द के प्रवाह के कारण गद्य में भी कविता के तथ्य समाहित हो जाते हैं। इन दिनों बंधन-मुक्त छन्दों का प्रचलन भी बढ़ा है। मूलतः गीतकार होने के कारण मैं नवगीत को मनुष्यता की अनिवार्य आवश्यकता मानती हूँ। नवगीत ने जिन परिस्थितियों में साँस लेना प्रारम्भ किया, उसने जीवन में जिस मुक्तता के साथ राग-भावना का संचार किया, जीवन-संदर्भों के प्रति जिस विश्वसनीय विश्वास को जन्म दिया, प्रेम-सौंदर्य एवं जीवन के अन्य क्रिया-व्यापारों को पहली बार इतने समीप से जानने का सुख दिया, सुख और दुख का कोई भी कोना जिसने अछूता नहीं रहने दिया, उस नवगीत की प्रासंगिकता की तब बहुत चर्चा हुई।

गीत रचना में वस्तु और रूप की द्वन्द्वात्मक एकता होती है। इसको लोकप्रिय और संवेदनात्मक बनाने के लिये संगीत, लोकधुनों, लोक मुहावरों और लोक शब्दावलियों का प्रयोग होता है। मैंने अपने नवगीतों में इनका प्रयोग कभी-कभी तो आवश्यक मानकर भी किया है। मगर इसमें अनुभव और अनुशासन की जरूरतों का अतिक्रमण कर नवगीत कुछ और हो जाता है। अपने बाद के दिनों में नवगीत यदि रूपवाद और सरलीकरण से आक्रान्त हुआ

तो उसके मूल में वही कारण था।

नवगीत पर आरोप भी लगा कि वह जनजीवन से कटा हुआ था। यह आरोप सही नहीं है। पन्द्रह प्रतिशत नवगीतों में केवल जीवन के रोमान ही व्यक्त हुए हों तो पच्चासी प्रतिशत नवगीतों में मध्यवर्गीय और साधारण जन के दुख-दर्द, कुंठा, त्रास, पराजय, घुटन, आशा-निराशा, सपने, विश्वास, दुख-सुख आदि व्यक्त हुए हैं। यदि यथास्थिति के चित्रण अधिक हैं तो इसका कारण भी तत्कालीन परिस्थितियाँ एवं समाज-व्यवस्था ही है जिनमें युवा वर्ग का अधिकांश बेरोजगारी के कारण अपनी कार्य-क्षमता खोते हुए एक शून्य की गिरफ्त में आ गया था। दिशाहीनता के कारण वह निरन्तर एक भटकाव झेल रहा था। ऐसी परिस्थिति में स्वप्नजीविता का होना स्वाभाविक है।

नवगीत जैसी दीर्घकालीन विधा के रहते जनवादी गीत का उभार अचानक नहीं था। इसके अपने अपरिहार्य कारण थे। मगर इसका अर्थ यह नहीं कि नवगीत पूरी तरह अपदस्थ या अस्त हो गया या उसकी संभावनायें क्षीण हो गईं। जनवादी गीतकारों में अधिकांश ने अपनी गीत-यात्रा नवगीत से ही प्रारम्भ की थी। इसलिये उनके गीतों में कहीं-कहीं नवगीत की संवेदना आ ही जाती है। वैचारिकता की सघनता के साथ जनवादी गीतों में भी प्रेम-सौंदर्य, करूणा आदि की भावगत कोमलता भरी हुई है। भले उसका धरातल दूसरा है। वर्ग-भावना, प्रेम-सौन्दर्य और करूणा आदि कोमलता से भरे प्रसंग विचार के द्वारा नवगीत और जनवादी गीत को दो स्पष्ट पाटों में बाँट देते हैं। नवगीत पर सायास रचे जाने की धूल बहुत बाद में उड़ायी गयी। जनवादी गीतों की वैचारिकता और व्यापक मनुष्यता में उसकी निष्ठा ने उसकी नींव को अधिक विश्वसनीयता और मजबूती दी।

किसी आग्रह के कारण नहीं, सहजता से मानती रही हूँ कि गीत जनता के अधिक समीप होते हैं, उसके मन-प्राणों पर छाये रहते हैं, उसके जीवन को आन्दोलित और संजीवित करते हैं। गीतात्मक होने के कारण ही कबीर–तुलसी–मीरा आज भी जनता के प्रिय कवि हैं।

सन् '60 से '78 तक नवगीत पूरी तन्मयता से लिखा जाता रहा। ठाकुर प्रसाद सिंह और शंभुनाथ सिंह के नवगीत संग्रहों के बाद 1963 ई० में उमाकान्त मालवीय का नवगीत-संग्रह 'मेंहदी और महावर' प्रकाशित हुआ।

रमेश रंजक का पहला नवगीत-संग्रह 'गीतविहग उतरा' सन् '69 में प्रकाश में आया। मेरा पहला नवगीत-संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' 1970 में आया। नचिकेता का 'आदमकद खबरें' 1973 में प्रकाशित हुआ। इस बीच कोई दूसरा नवगीत संग्रह नहीं आया जो इसके इतिहास में रेखांकित हो। पर नवगीत की जमीन पककर तैयार होती गई। कोई भी गीतकार उनदिनों नवगीत ही लिखता था। लिखना चाहता था क्योंकि वह एक ऐसा समय था जब नवगीत लिखना समय की संवेदना से जुड़ना था। उसमें इतना आकर्षण था कि कितने ही कवि गीतकार बन गये थे। जिसतरह धूप मुट्ठी की पकड़ में नहीं आती, गीत की संवेदना को भी सायास प्राप्त नहीं किया जा सकता। वह ऐसी संवेदना है कि जहाँ भी होती है, अपनी कोमलता और कोमल-कठिन अभिव्यक्ति की पहचान छोड़ती है। वह गद्य में भी पहचानी जा सकती है।

मैं मानती हूँ कि गीत जीवन की अनिवार्यता है। जबतक जीवन है, जीवन में रागात्मकता है – गीत की प्रासंगिकता अक्षुण्ण है। लौकिक जीवन में ऐसा कोई सामाजिक कार्य नहीं है जिसमें गीत की जगह नहीं हो। यह श्रम–शक्ति को संघटित और गतिशील करता है और श्रम-शक्ति के ह्रास से उत्पन्न तनाव और थकान को कम करने का सबसे कारगर हथियार है। मगर जो रचनाकार गीत नहीं लिख सकते, वे इसको कमजोर विधा मानते हैं। चर्चित नवगीतकारों ने शब्दों की ध्वनि और ध्वनि के अनुगूँजात्मक प्रभावों पर विशेष ध्यान दिया है।

हर रचनाकार सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संघर्ष में ही विकसित होता है। नवगीतकारों को ये संघर्ष बहुत झेलने पड़े। मुझको तो मेरे इन संघर्षों ने ही रचा है। मेरे दिन तब बड़े कठिन थे। मुझको पढ़ना भी था, केरियर की चिन्ता थी, परिवार देखना था और गीत की रचना भी करनी थी। बहुत कम सुविधाओं में मुझको ये सारे काम करने थे। तब नवगीतकारों के दायित्व भी बड़े थे। गीत को नयी दृष्टि से देखना, सोचना-लिखना-सचमुच गुरुतर कार्य था। नवगीतकारों को ताजे-टटके, अछूते बिम्ब जुटाने थे। उपमा-रूपक की ताजगी और भाषा की सादगी के कारण नवगीत अपने पूर्ववर्त्ती गीतों से अलग दीखते थे। नवगीत के भाषागत प्रयोग जितने पैने हैं, उतने ही सम्मोहक भी। मैं कह चुकी हूँ कि नवगीत में यदि तनाव, पीड़ा, कुंठा, पराजय, साथही रंगीन सपने अधिक हैं तो इनके लिये

तत्कालीन समाजार्थिक व्यवस्था ही जिम्मेदार है। पढ़े-लिखे युवकों का बेकार होना, गाँव की कृषि–व्यवस्था की बदहाली तथा अनिश्चित भविष्य ने युवावर्ग में एक प्रकार की बेचैनी, त्रास और घुटन की मानसिकता बनायी थी। नवगीतकारों में अधिकांश इसी मानसिकता के साक्षी थे, उनको निकट से इनका अहसास था। बेकारी के मनस्ताप को झेलते हुए युवावर्ग में केवल मध्यवर्ग के ही युवा नहीं थे, गाँव या शहरों के वे युवा भी थे जो पेट की खातिर, उन्नत भविष्य की खातिर गाँव और छोटे शहरों से महानगर की ओर पलायन कर रहे थे। छोटे कस्बों के वे साधन और पूँजीहीन युवा दिल्ली, कलकत्ता, पंजाब, असम में जाकर अपना भविष्य तलाश रहे थे। अभाव मनुष्य को स्वप्नजीवी बना देता है। नवगीत का स्वप्न-लोक इन अभावों की ही देन है। सच तो यह है कि सपनों के बारे में नवगीत में जितना लिखा गया, छायावाद को छोड़कर और किसी काव्य-धारा में नहीं। नवगीत ने छायावाद से भी अधिक लोकप्रियता अर्जित की। इसकी अभिव्यक्ति में अपेक्षाकृत अधिक चमकीले, ताजे, मोहक और समृद्ध बिम्ब हैं।

नवगीत में जो एक कमी रही, वह यह कि इसका इतिहास नहीं लिखा गया। स्वयं कुछ वरीय नवगीतकारों से ही इसका अहित हुआ। जब विधा की पहचान पकड़कर उसके विकास का इतिहास लिखा जाना चाहिए, तब उसके उत्स को लेकर ही विवाद होता रहा। छायावाद के कवियों ने स्वयं अपने ऊपर जितना लिखा और एक दूसरे पर जितना लिखा, वह उस विधा को समझने के लिये पर्याप्त है, पर नवगीत में यह काम बाधित रहा। नवगीतकार एक दूसरे से आगे निकलने के होड़ में बेचैन रहे। उन्होंने विधा नहीं अपने बारे में अधिक सोचा। नवगीतकार ने अपने बारे में लिखा भी नहीं, अपनी रचना-प्रक्रिया को भी कम ही स्पष्ट किया। इसलिए एक पाठकीय रुचि बनने में कठिनाई हुई। छोटे-छोटे मतभेदों ने भी इसकी एक स्वस्थ-संगठनात्मक छवि नहीं बनने दी। अन्यथा क्या कारण था कि इतनी सशक्त, जीवंत और दीर्घकालीन विधा जो आज भी लिखी जा रही है, का असमय बिखराव हो जाता? जिस नवगीत ने सुखद भावों को जगाने, मोहक बिम्बों को रचने, सुप्त स्मृतियों को सहलाने का काम इतनी तन्मयता से किया, जनता–पाठकों, श्रोताओं के सामने नये ताजे गीत के रूप में आने का अधिकार प्राप्त कर लिया, वह बाद के वर्षों मे पूरी सघनता से क्यों नहीं आया। क्या वह आने योग्य नहीं रहा? यदि ऐसा होता तो आज भी नवगीत नहीं लिखे जाते, नवगीत-संग्रह के

प्रकाशन नहीं होते। जीवन कितना भी कठिन हो जाए, कोमलता का पूरा निर्वासन नहीं होता। राग को जीवन में आँजे बिना जीवन कठिन है। यदि इतने भर के लिये भी नवगीत बचा रहे तो पूरा का पूरा नवगीत बच जाएगा। अलिखित होकर भी उसका इतिहास अमिट होगा। एक बात बार-बार सालती है कि अपना वर्चस्व सिद्ध करने के लिये शम्भुनाथ सिंह के 'दशक' और राजेन्द्र प्रसाद सिंह का 'सप्तदशक' भले प्रकाशित हुए, पर आज तक नवगीत का एक जायज 'एन्थोलॉजी' प्रकाशित नहीं हुआ। यह विधा की कमजोरी नहीं, अपितु विधा से अधिकाधिक अपेक्षा करने के कारण हुआ। यह अधूरा काम आज भी हो सकता है। जिसके पास 'रात आँख मूँदकर जगी', 'सुबह रक्तपलाश की' 'गीत विहग उतरा', 'पुष्पचरित', 'परछाई टूटती', 'आदमकद खबरें', 'हरसिंगार कोई तो हो,' 'बंजर में बीज', 'टूटते जलबिम्ब,' 'जाल फेंक रे मछेरे', 'लौट आये सगुनपाखी', 'महुवा—महावर', 'उड़ान से पहले' 'रंग बोलता है', 'सन्नाटा ढोते गलियारे', 'उस गली के मोड़ तक' आदि गीत-संग्रह हों, वह विधा स्वयंसिद्ध और समृद्ध ही होगी।

महत्वपूर्ण यह है कि अनुभूति की संवेदना गीत को अन्तस्तल तक पहुँचाती है और विचार उसको ठोस सामाजिक आधार देते हैं। अद्यतन काव्य-दिशाओं से साक्षात्कार करने के लिये नवगीत की भूमिका सामने आएगी। कई नवगीतकारों के संग्रह समय पर नहीं आये। इसलिये भी इसकी निरन्तरता को बाधा पहुँची। समय-संदर्भ के कारण संवेदनायें बदल जाती हैं, पर कुछ संवेदनायें समय बदलने पर भी तरोताजा रहती हैं। प्रेम, ममता, दया, क्षमा, सहानुभूति, करुणा, अत्मीयता, पारिवारिकता, सामाजिकता, एकजुटता आदि की भावनायें और संवेदनायें नहीं बदलतीं जिनको नवगीत ने अधिक तन्मयता से लिखा। एक बात यह भी है जो तत्कालीन समय का सच और नवगीत की समसामयिकता और प्रासंगिकता को सिद्ध करती है। '60 के बाद '75—'78 तक कवि सम्मेलनों के मंचो पर नवगीत अधिक लोकप्रिय रहा। यह बात अलग है कि लोकप्रिय होना और समय के साथ होना अलग-अलग बातें हैं। फिर भी नवगीत अपनी अभिव्यक्ति में वस्तु-शिल्प के कारण जनताके मन में रच-बस गया था। नवगीत के पहले ऐसा समर्थन प्रगतिवाद के गीतों को छोड़कर किसी को नहीं मिला।

आज लगता है, सचमुच 'ओ प्रतीक्षित' क्या आया था, धूप के कपड़े

पहनकर दिन मेरे जीवन में आए थे। वह ऐसी धूप थी जिसमें तपन भी था और खुशी की एक आहट पाने की ललक भी।

सम्प्रति अपने रचना-क्षणों के साक्षी, अनन्य प्रशंसक, आलोचक और मित्रों का स्नेह-सद्भाव स्वीकारते हुए 'ओ प्रतीक्षित' का यह दूसरा संस्करण पाठकों, श्रोताओं, शोध-छात्रों एवं अत्मीयजनों के लिये अर्पित कर रही हूँ। इसमें पहले संस्करण का सबकुछ पूर्ववत् है। केवल प्रकाशन, मुद्रण और मूल्य में नयापन है। समय के साथ बदले नवगीत के स्वरूप, स्वभाव और प्रभाव पर मेरे संक्षिप्त विचार भी हैं।

मैं अपने परिवार और मित्रों के साथ मुद्रक सनफ्लावर प्रिन्टर्स के प्रति भी अपना स्नेह व्यक्त करती हूँ।

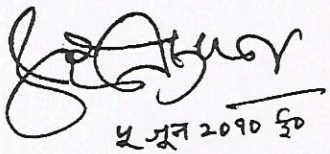

ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी – 2010
36, आफीसर्स फ्लैट्स
जुबली रोड, नार्दर्न टाउन,
जमशेदपुर – 831 001, झारखंड
मो. : 9430917356
स्थायी पता :
मीठनपुरा, भी. सी. गली
क्लब रोड, रमना
मुजफ्फरपुर–842002, बिहार
दूरभाष : 0621–2270895

ओ प्रतीक्षित

पास मेरे शेष रहे –
कुछ तस्वीरें, कुछ साये ।

अब चाँदनी टटकी नहीं लगती
सब कुछ वैसी ही, वैसी नहीं लगती
ये हवाएँ क्वाँरी आँखों की –
सब कहीं छुई नहीं लगती

अजाने किस देश रहे –
सुधियों के दंश अनभाए ।

प्रश्न एक जलता रहा मन में
पलता रहा ताप एक तन में
जी भर छुआ जो तुम्हें –
छुवन भी मौन क्यों विजन में

कुहरों में छिपे रहे –
गुमसुम से बोल शरमाए ।

साँसें काँपीं काँस-वन सी
साधें आ-जा रहे घन सी
धागों में लिपटी उँगलियाँ –
वहीं कहीं डूब गई वंसी

पात कमल के मौन रहे –
गंधों के छंद अनगाए ।

△

झेलती रहूँ कब तक
एक 'किन्तु' और
तुम्हीं कहो।

सोचा था खींच दूँ –
रोशनी की लकीर
बाँध दूँ समय को –
अपने ही तीर
ऐसा कुछ हुआ नहीं –
होंगे क्या और
तुम्हीं कहो।

पल भर में बाँध भी –
टूट गए सारे
जिन्दगी बह निकली
एक गति के सहारे
एक ही विश्वास के
संदर्भ कितने और
तुम्हीं कहो।

ये उदास चेहरे धँसे औ –
डबके स्याही सा अंधकार
मायूसी के आलम पर –
खुशियों का ही प्रचार
ढो चले कोई कहाँ तक –
ये दिखावे और
तुम्हीं कहो।

तन धीरे हुआ कास-वन
मन. सूरजमुखी बन गया ।

छवि खिंची दरपनी वक्ष पर
एक तूफान थमने लगा
गंध महकी जुही - जंगलों सी
एक पिघलाव जमने लगा

अगरु-धूम साँसों-सने –
मोह दुहरा बना तन गया ।

पर्वत से गिरी धार सी –
आँचलों में बँधी मूर्च्छना
एक बादल बरसता रहा
और धुलती गई वासना

छाँह से छाँह बँधती गई
औ' ठहरता सलज क्षण गया ।

जाने फिर लौटी कहाँ से -
पहिले वसन्त की मिठास
बाँहों में डूब गया प्यार
खुला-खुला उधरा अकाश

आलस - भरे ये अँधेरे –
आज बंधन गया बन नया ।

△

कहाँ-कहाँ भटके मन और –
कोई तो सेतु जहाँ मिले एक विराम !

अत्महत्या कर लौटा है सूरज
चक्कर खा गिरती है शाम
अँधियारे नहाए मन के गीत –
सोए कितने पहरुए गुमनाम

कहाँ-कहाँ विरमे तन और –
कोई तो मुक्ति मिले माँगे भी दाम !

घबड़ाकर कुछ का कुछ कह दूँ –
ऐसे पूछो न कोई बात
उमसों भरा दर्द का पठार –
झीलों में होती छाँहों की घात

कहाँ-कहाँ बाँधूँ क्षण और –
कोई तो ठाँव लिखूँ अपना जो नाम !

एक-एक करते आजतक यहाँ-वहाँ-
छूटे न जाने कितने ही मोड़
मुट्ठी भर रेत सी रिसती इच्छाएँ –
एक बँध जाता कितने क्रम तोड़

कहाँ-कहाँ टूटे प्रन और –
कोई तो गंध बिसर जाय यातयाम ।

वह भी होना था -
यह भी होना है !

शीशे के आर-पार हम
काँच के कँचनार से तुम

खाली-खाली मन का-
वह भी कोना था-
यह भी कोना है !

सो जाए जब जागा भाग
आरती से लग जाए आग

बासी-बासी तन का -
सब कुछ ढोना था -
सब कुछ ढोना है !

एक जोड़ बहती हुई नदी
पोर-पोर घुल जाती सदी

सूना-सूना छन का-
क्या सब खोना था -
क्या सब खोना है !

बनते हो मेरे संस्कार के भागीदार-
पर क्या हो तुम, क्या हो तुम ?
बस एक तमाशबीन !
तुम सब तमाशबीन !!

कुछ सुविधा बदले मन बिका उधार-
पर क्या हम कम, क्या है कम ?
किया कहाँ यकीन !
तुम सब तमाशबीन !!

कहते खुद को सारे सुख-दुख के साझीदार-
पर हो जाते गुम, क्यों जी गुम ?
हिले जहाँ जमीन !
तुम सब तमाशबीन !!

दुविधा से भरा पड़ा सारा यह बाजार-
पर ऐसे ही तुम, क्यों जी तुम-
मोती लाते छीन !
तुम सब तमाशबीन !!

मानूँ मैं भी तुमको, ऐसा-वैसा मीनाकार-
गढ़ते जो एकदम हाँ एकदम-
पल में मूरत तीन !
तुम सब तमाशबीन !!

पाँव तेरे देहरी पर आ रुके होंगे
और मन पर खिंची होगी एक साँकल-
अथिर सूनापन नयन नम हो गए होंगे !

संघर्षों का होगा उगा सूरज-
दहशतों-भरी डूबती सी शाम
आज भी अकेले ही दीखते होंगे -
भीड़ों में कतराए से प्राण

वहीं किरणों पर बासी जुही के सर झुके होंगे,
और आई-गई सी हुई होगी बात -
सिले दर्द ओठों में कम हो गए होंगे।

झनझनाकर टूटता होगा-
किसी वादे के भरोसे मन
काँपकर फिर ठहरती सी बाँह-
सामने औंधा पड़ा दर्पण

तभी कितने जी गए सुख, दुख गए होंगे
और अब भी खिड़कियाँ होंगी खुली-
बोझ मन के बर्फ से तन पर जमे होंगे ।

छू गया होगा अकह मन का-
कोई बंधनों के आर-पार
दुहरी हो गई होगी उदासी-
झाँक कर टूटे दृगों से बार-बार

मोमबाती से सपन के क्षण बुझे होंगे
और साँसों में समेटे अनबुझी सी प्यास-
अधमुँदे बादल बरसकर थम गए होंगे।

खोया जहाँ नयन का सपना-
वहीं एक दुनिया बसी !

रूप नयन में नाम अधर पर
गंधिल साँस मिली
एक अपरिचित सुर-शोभन से -
वन-वन डाल हिली

रोया जहाँ जलन का कुहरा-
वहीं एक खुशबू हँसी।

दूर हिली कोई परछाँई-
नेह अथोड़ जगा
स्नेह-शपथ का उमड़ा सावन-
अस्थिर अंग लगा

सोया जहाँ सपन का पहरा-
वहीं एक गाँठ कसी!

एक पराजय ने जीता है-
अनकह जीवन-क्षण
राह जहाँ तक संग जायेगी-
होंगे नहीं विमन

जहाँ तिमिर तपन का ठहरा-
वहीं एक सुरभि लसी!

क्या दे डालूँ तुम्हें कि जी हल्का हो जाए !

एक व्यथा, एक साध कि जी ऊबा-ऊबा है
एक दूसरे की आँखों में डालो आँखें-
सीधी कर लो फिर निढाल सी अपनी आँखें-
और कहो फिर, कि मन कितना डूबा है
तोड़ अबूझे मौन, गाँठ मन की खुल जाए !
क्या कह डालूँ तुम्हें कि जी हलका हो जाए !!

कहीं भीतर रौंद जाता है परायापन
फिर घिरने धुन्ध में लगता तुम्हारा चेहरा-
और घना होता है प्राणों का कोहरा-
काँचों के टुकड़ों-सा गड़ता अकेलापन
छोड़ो घने तनाव, उलझनें भी रिस जाएँ !
क्या कर डालूँ तुम्हें कि जी हलका हो जाए !!

वहाँ-वहाँ दिख जाती शायद जहाँ न होती
कितना-कितना तोड़ तराशा अपने को-
नहीं अपरिचित लगूँ किसी भी सपने को-
आगे-आगे समय कि पीछे हम मिल जाएँ !
क्या समझाऊँ तुम्हें कि जी हलका हो जाए !!

△

एक और क्षण आज ऐसे कतराया है !
बर्फ के ओठों पर रक्त उतर आया है !!

डूब-डूब जाता मन आँखों के काजल में
बँधती न पीड़ा है, पाँवों के पायल में
रेती के सागर बन ये मीठे सपने -
उमड़े ज्यों अर्थहीन भाषा हो छल में
बादल बेमौसम यह ऐसे गदराया है !
भूले सम्बन्धों का सूत्र निखर आया है !!

अनाथों की हँसी सी उदसी यह सँझवाती
बाहर पिघलता है आसमान फागुन का
संदली काया यह असमय ही मुरझाई -
वायलिन बजाए ना स्वप्न-मेघ सावन का
केसर सा परस प्राण, ऐसे गहराया है !
टेसुई अँजोरे में रूप उभर आया है !!

पछुवा के बिगड़े बहके ये झोंके -
दुपहर से दरवाजे खोल-खोल जाते हैं
जाने हैं कितनी संदर्भहीन पीड़ाएँ -
मन के अनागत कुछ बोल-बोल जाते हैं
भाव यह अभावों का ऐसे शहराया है !
जैसे अधबना चित्र कोई सँवराया है !!

बदली में झाँक रहा चाँद, ऐसे में बाँसुरी बजाओ पिया ।
चुप-चुप क्या आँक रहा चाँद, ऐसे में कुछ गुनगुनाओ पिया ।।

जुही सी रात खिली -
बेला सी चाँदनी
तारिका महक रही -
नाच रही रागिनी

प्राणों के ज्वार पर बजते सितार सात,
सुधियों की सोनपरी उतरी उन्मादिनी
लहरों को टेर रहा चाँद, ऐसे में कुछ मुस्काराओ पिया ।
अकुलाए प्राणों के चाँद, ऐसे में सपने सजाओ पिया ।।

अंगराग - गंधभार -
पुलक हवा गाती
तनिक छुवन साँसों की
सिहरने जगातीं

अलक-भार झुकी-झुकी पलकें शरमीली
रिसती सी रूप की सुगंध गमगमाती
जूड़े को खोल रहा चाँद, ऐसे में उसको भरमाओ पिया ।
रह-रह कर डोल रहा चाँद, ऐसे में गीत कोई गाओ पिया ।।

नीलिमा नभ-नयन की
सभी हँस रही
हर कहीं शारदी की
सुरभि बस रही
क्या जाने समा जा रहा प्राण में
बाँह मन की अजाने कहाँ फँस रही
अपलक क्या देख रहा चाँद, ऐसे में छवि रिमझिमाओ पिया ।
किसका पथ जोह रहा चाँद, ऐसे में मन तो रमाओ पिया ।।

साथ-साथ चला किए-
समय और हम।
काटने लगती अधिक
दफ्तर की मेज
जेठ बहुत कम लगता
माध बहुत तेज
अपने से छला किए -
मन के वहम।
मन में धुएँ भरे
सूखे आँखों के विरवे
सोखती धूप को खिड़कियाँ
बेहिसाब मौसम दबे
मन ही मन गला किए
थका न भरम।
पली हैं मन में
आशंकाएँ बहुत
सूखी रह जाती है
सावन की रुत
दिन रहते ढला किए
कमा नहीं गम।
क्षितिज तो छलावा है
समझाए कौन
शीशे चिढ़ाते मुँह
रहकर ही मौन
करने को भला किए-
मिले हैं सितम।

द्वार तेरे, द्वार मेरे -
एक गंध का पहरा ।

जाने क्या कितनी होंगी
ऐसी - वैसी बातें
मन को छूले औ' वेधे -
छोटी - छोटी घातें

संग तेरे, संग मेरे-
एक रंग ही गहरा ।

बंधन बन जाते हैं कैसे
हल्के रिश्ते - नाते
और पहाड़ों के नीचे भी-
कई कमल खिल जाते

दर्द मेरे, दर्द तेरे-
ओढ़ मौसम दुहरा ।

कभी लाख होने में भी कुछ
नहीं नजर में आते
झूठे जीवन जी लेना भी
कितने सच हो जाते

पार मेरे, पार तेरे-
ठहरा नीला कुहरा ।

मेघ जहाँ तक घिरे -
आह वहाँ तक घिरी !

दुलराती हर सपना को
चाहों के सिरहाने
लेकर बोझ अगरु-धूमों सी
इच्छा के अनजाने

नीर जहाँ तक गिरे-
ईहा वहाँ तक गिरी ।

फूँक रही समय की वंशी
स्वर निकाले कतराए
तुम पत्थर की नाव बने-
जल-बिच तिर न पाए

पाल जहाँ तक उड़े-
साध वहाँ तक उड़ी ।

राहों के काँटों से मन में
मंजिल की सुधि आई
कितनी बार आँधियों में-
दीप जलाकर गाई

रंग जहाँ तक भरे-
स्मृति वहाँ तक भरी ।

ये शिकायतें, ये उलाहने-
अर्थ चुकेंगे इनके कुछ दिन बाद
कौन कहेगा, कौन सुनेगा
शब्द निरे भरमेंगे कुछ दिन बाद
जूड़े में टँकते देखा क्या बरगद के फूलों को-
समझौते की बात नहीं, है अभी उमर कहने-सुनने की ।

अभी दुखा जाती हैं तुमको
मेरी कुछ अभिमानी बातें
अपने से खुद कोई कबतक
कर पाता है इतनी घातें
दुपहर में खिल-खिल कर गुलमुहरों को देखा तपते -
अभिशापित कर जाती जीवन, आदत मेरी चुप रहने की ।

अपनी भूल कभी देखी ना
पीछे पड़ मेरी भूलों के
कल मन का क्षण आ ही जाए
कैसे दाग मिटे शूलों के
फूलों वाले हाथ रंग के गीतम छन्द रचेंगे -
तुम कहते-कहते मत हारो, हार न मेरी हो सहने की ।

रही खटकाती सपन के द्वार
सारी रात, सारी रात-
एक भटकी रोशनी के लिए।

अब भी सब कुछ वैसा ही
पर वैसा क्यों नहीं!
भरे-भरे बादल से दिन-
पँखुरी में नमी ही नमी
दस्तकें देती पवन के द्वार
सारी रात, सारी रात-
एक महकी माधवी के लिए।

खिले अब भी फूल बेले के
बहकता सा गंध का उन्माद !
ओठों में सिले-सिले उलहने-
गहराए हैं बरसों बाद
गंध भटकाती रही हर द्वार
सारी रात, सारी रात-
स्वयं मन की तृप्तियों के लिए।

दर्द का बढ़ता ही गया
अपना सगा-सम्बन्ध!
क्यों निरर्थक से रहे-
मन के तरल अनुबंध
व्यर्थ ही फिरती रही सब द्वार
सारी रात, सारी रात-
एक बहकी चाँदनी के लिए।

△

मेरे तो थे भरे-पूरे सवाल
मीत, तूने क्या दिए-
आधे-अधूरे जबाब!

बातों ने शुरुआए ऐसे कुछ सिलसिले
ओठों में अँके-टँके शिकवे कुछ-कुछ गिले

वाली वय अनबोल बोल
मीत, तूने क्या किए-
ओढ़कर तनाव के नकाब!

परदे बीमार और बंद गली, दरवाजे
सीखचों में कैद कोई धूप गई मर लाज

ऐसे मैं खड़ी की खड़ी
मीत, तूने क्या जिए-
चुनते ये जूही-गुलाब!

आँखों में आँज ली थोड़ी गलतफ़हमी
खूबसूरत भूलों के जीने में क्या कमी

कोर तक आकर लौटे जो बादल
मीत, तूने क्या लिए -
जिम्मे सब अधबने हिसाब!

कास के सफेद फूल
आमों के बौर
बँधे हुए आँचल में कसमों की डोर
क्षमा कैसे बाँधूँ ?
कितने तट, भीड़, गमक
और नगर-गाँव
जी लिए सहज-सहज
हमने भी छाँव
सपनों के नील जाल
मन की मछलियाँ,-
बँधे हुए आँचल में साँसों के शोर
क्षमा कैसे बाँधूँ ?

गीले सावन ने आँखों में तैर
कितना-कितना कहा-
मौसम है गैर
दिन-माह-बरसों के
इतने-इतने सुख
बँधे हुए आँचल में कुंकुम के भोर
क्षमा कैसे बाँधू ?

गंधाए दर्द बहक-
कह तेरे नाम
माँगते दुबारे हैं -
रंगों के दाम

लदे फूलों सी इच्छाएँ
गदराए कजली के बोल
बँधे हुए आँचल में चंदन के पोर
क्षमा कैसे बाँधूँ ?

रोएँदार कुहासे–
आँखें झँपी-झँपी
सोनरायी पातों पर ठहरी भोर ।

प्राणों से उलझे प्राण
झीलों भर हँसे गुलाब
उजले-काले हुए अँधेरे
भागे आहट दाब

नमी बेतहासे –
खुशबू कँपी-कँपी
कबूतर के पंखों पर ठहरी भोर ।

औंधे कजरौटे सा असामान
फटे आँचल सी नदी
पथराए बरगद के नैन
ठहरी सी कोई सदी

मौसम ने फेंके पासे
मछली छपी-छपी
बरफों के फूलों पर ठहरी भोर ।

ठण्ढे लोहे सा एकान्त
कनेरों सी टुसियायी रात
सूरज ने छिड़के अबीर
दुहरे हैं कुहरी के गात

महकी हैं साँसें
सुधियाँ तपी-तपी
अलसायी पलकों पर ठहरी भोर ।

नए संदर्भों को जोड़ दिया
किसी उत्तेजित क्षण ने
तुमको मुझसे जोड़ दिया ।

टूटे गईं सब दीवारें
छँट गए सभी सन्नाटे
अब तो सब स्वीकार
समर्पण ने कितने पल बाँटे

राह को कितना मोड़ दिया
किसी समर्पित क्षण ने
तुमको मुझसे जोड़ दिया।

कई नावों में कई दीप
से जलते ये एकान्त
रोप दिए कितने रेखांकित
क्षितिज मयूरी कान्त

नहीं होने का दुख छोड़ दिया
किसी सुवासित क्षण ने
तुमको मुझसे जोड़ दिया ।

चुप नहीं मन अब
किसी अपराध के भय से
प्यार कोई गीत को
बुनता गया लय से

नामहीन पत्थर को तोड़ दिया
किसी स्वीकृत क्षण ने
तुमको मुझसे जोड़ दिया ।

कुछ देर यों ही आस-पास हो लें
मन है, आकाश हो लें।

मन जब से उलझा है, उलझे शैवाल
तट पर भरमाया सा, मछुवा बेहाल
सिहरी सी मछली है, भींगा है जाल

ऐसे में क्यों तन उदास हो लें
मन है, आकाश हो लें।

उमड़-उमड़ जाने का बदराया क्षण
और दिवास्वप्नों का आसंगित मन
फूल-फूल पास-पास हिलता मौसम

ऐसे में बातें कुछ खास-खास हो लें
मन है, आकाश हो लें।

आओ, धारा में साथ-साथ डूबें
बाँधे कुछ ऊँचे, कुछ गहरे मनसूबे
कुछ पल तो ऐसे न रहें ऊबे-ऊबे

गाँठ खोल नयन गीत काश ! हो लें
मन है, आकाश हो लें।

यह शहर पत्थरों का पत्थरों का शहर।
टूटी हुई सुबह यहाँ
झुकी हुई शाम
जेलों से दफ्तर के
शापित आराम
गाँठों सी गलियों में भरी-भरी बदबू
साफ हवा की जगह पिएँ सभी जहर
पत्थरों का शहर।
घुटते सम्बंधों की
चर्चा बदनाम
धुएँ के छल्लों सा
जीना नाकाम
मकड़ी के जालों सी बिछी हुई उलझनें
सतही शर्तों से सब दबे हुए पहर
पत्थरों का शहर।

गोली में नींद यहाँ
बिके खुले आम
साँसों के कर्ज लिखे
इच्छा को नाम
ताजा खबरों को जीते हैं यहाँ लोग
डूबती निगाहों में नुमाइशी लहर
पत्थरों का शहर।

सिर्फ औपचारिक हैं
परिचय प्रणाम
चाय पिला जोड़ें सब
चीनी के दाम
अंधी दीवारों से टकरा निरुपाय
लँगड़े सुधारों के कँफसते कहर
पत्थरों का शहर।

हम चल रहे जुलूस में
हमारे पीछे एक जुलूस।

चाल हुई धीमी या कि रुके हम
पीछे के रेले से बढ़ गए कदम
कैसी यह रफ्तार जानते नहीं -
चलना ही मजबूरी चला किए हम

दबा-दबा मन का विद्रोह
इधर-उधर से लेकर घूस।

हमारे दायें-बायें शहर का फैलाव
होटल-कहवाघर नए बोध का सैलाब
दफ्तरों में जिन्दगी के खोखले ताबूत
क्रमहीन बहसों को ढो रहे भटकाव

दैनंदिन चिन्ताएँ तन को
दिन-रात ही रहीं चूस।

भीड़ों की जिन्दगी साथ लिए ऊब
नंगी खामोशी में चैन गई डूब
ताख पर धरे पड़े सारे एहसास-
खण्ड-खण्ड में बँटे आदमी भी खूब

अपने ही कंधे लाश ले अपनी
छाते रहे अपने घर फूस।

△

हर शाम, हर सुबह
बेकाम ऐसे रह
कटे कैसे लमहे जिन्दगी के ।
अर्थहीन जो जहाँ, वही मैं
संदर्भों से कटा, कोई, मैं
बदनाम बेवजह
अंजाम तू ही कह
डँसते जैसे बोल वन्दगी के ।
दुहरापन लिए तन-मन का
घाव झेलते क्षण-क्षण का
सरनाम दर्द यह
अनजान से सुलह
बेवशी बन घेरे गन्दगी के ।
आँखों में चूर-चूर एक शीशा
बदनसीब का और क्या किस्सा
नादान होके सह
ईमान मेरा वह
भूलते नहीं मोल वानगी के ।

अपने इषत् का हर क्षण दिया तुझे
स्वीकारा कण-कण का आभार, ओरे मन !

मेरे नाम लिखे तुमने
कुछ भूखी बहस, जुलूस
सतही चर्चाओं के टाँके
सिले पहर मनहूस
अपने संवेदन का भागी बना तुझे
स्वीकारा क्षण-क्षण का आभार, ओरे मन !

सड़कों, गलियों, पत्थरों ने
बुने मिलकर महानगर
लम्बी बातों ने किए मजाक
हीनता-ग्रंथि से भरे शहर
अपनी उमसों की हर सीमा दिखा तुझे
स्वीकारा सपनों का आभार, ओरे मन !

भागे जाने के क्रम में
सब छूट गए पीछे
ऐसा चढ़ा बुखार
शिथिल हैं पारे आँखें मीचे
अपने सुख-दुख में साझी किया तुझे
स्वीकारा जन-जन का आभार, ओरे मन !

△

जितना-जितना भटकाया मन
मिला उतना ही अकेलापन !

ढहे जैसे रेत के कगार
चुके जैसे बादल धुएँ के
रेल की खिड़की के भागते दृश्य से
भाप बने पानी कुएँ के

जितना धोया कुण्ठाओं का तन,
खला उतना ही नया बासीपन !

बालू में रिसते पानी से समय
बहुत कुछ याद, बहुत कुछ नहीं
कागज पर कटे शब्दों की सतरें
लिख-लिखकर भी, अनलिखे कहीं

वहमों के पाले जितने ही क्षण,
लगा उतना ही बढ़ा खालीपन ।

बदहवास भाग रही इच्छाएँ
धूल भरे आँखों के ताल
नीचे पथरायी ढेर सी मछलियाँ
ऊपर खिंचे मेहराबी जाल

जितना सन्नाटा को चिरे निजीपन
उतना-उतना ही घेरे सूनापन ।

△

कहाँ भूला दूँ -
बोझिल ऊब, उमस
कहाँ छोड़ दूँ -
खाली मन का विद्रोह !

संज्ञाहीन उदास लगाव
और एक बेलौस तलाश
जीवित अकुलाइट को घेरे
कोई पत्थर अहसास

कहाँ फोड़ दूँ -
रिसते जख्मों को
कहाँ घोल दूँ -
उफनते इथर के उहापोह !
आतंकित परिवेश और
अहमियत की शापित ठूँठ
सड़कों पर जीता शहर
बीनता कटघरों में झूठ
कहाँ खोल दूँ-
रिश्तों की हजार किश्तियाँ
कहाँ झाँप दूँ -
वासना को जीने का मोह !

△

वही एकरस बात -
झगड़ती इच्छाएँ
रिसता और पिसता दिन ।

शाम तक पी जाना भोर की उमंगों को
धो देना वेवक्त जीवन के रंगों को

वही बेबस रात -
अनियमित दिनचर्या
प्रीति की दुल्हन कमसिन ।

दुपहर को बैठा कोई कागा मुंडेर
लगा देता अनचाही खुशियों की ढेर

वही नम बरसात -
खुशफहमी के आसार
फटी कमीज पर आलपिन ।

नकली चेहरों को जीती सड़कें
कर्जों के सूरज उग आते तड़के

वही निर्मम घात -
उतरती-चढ़ती जिम्मेवारी
बेकार मक्खियों की भिन-भिन ।

पढ़ने को दिए कई आखर
कहने को ओठ पर विराम ।

शब्द तो तुम बने
अर्थ मैं न बन सकी
तुम सतह भी बने -
पर्त कहाँ छन सकी,
ओसों में घुली रातों की
मैं पाँती गुलाबों के नाम ।

जब से बने तुम अतीत
खोजा किया वर्तमान
भावी में तुम फिर मिले-
खोयी सी ले पहचान
जाने को ये राहें पड़ीं-
भूल गए अपने ही गाम ।

माँगा जब मैंने यथार्थ
देने को था तब आदर्श
परिवेशों में घिरे हम-तुम-
खोजो जो मिल जाए हर्ष
प्राणों में कल्पन के पंख-
पाँवों में बंध लिए थाम ।

△

अजाने आ गई डोर हाथों में-
मैंने चाहा तो नहीं
अजाने मन उलझ गया बातों में-
मैंने चाहा तो नहीं

मेरा सम्बन्ध बना -
दाँत - तले रेत
मेरे मन-प्राण बने -
पानी - पटे खेत

मेरा तन भरम गया रातों में -
मैंने चाहा तो नहीं ।

तरबूज की लाल सतह -
काले से दाने
मेरा सम्मोहित क्षण-
यह कैसे जाने

नया अर्थ भर दिए घातों में -
मैंने चाहा तो नहीं ।

मेरे दिन बरगद के -
पास कहीं पोखर
मरी हुई मछली सी-
अपना सब खोकर

महुवे से टपके बतासों में -
मैंने चाहा तो नहीं

एक विराट् हिमालय रखकर
पीड़ा के सब आवेगों पर
कभी न लेकर नाम तुम्हारा-
मैं जी लूँगी ।

एक पराया सा अपनापन
घेरे जीवन का सूना क्षण
बरसे घन, आँखों का आँचल-
मैं सी लूंगी ।

यहीं कहीं संझा मुरझेगी
किसी व्यथा की कथा कहेगी
तभी राग के कटु आसव को-
मैं पी लूँगी ।

आँच दहके भी कैसे नमी बेहिसाब
सूखे से फूलों को ढोती किताब।

अंगो के पोर-पोर गंध के सलीब
प्रश्नों पर प्रश्न छिड़े हिलती सी नींव ।

गदराए मौसम की झुक आयी टहनी
आँखों में घिर आई सारी अनकहनी।

ओसों के आखर गुलाबों के नाम
ओठों पर दुहराया मौन का विराम ।

तालों ने बाँध दिए पाँव को अनेक
शब्द-शब्द भरमाए अर्थ मगर एक ।

महके भी कैसे जब गंध कहीं बंद
पंखुरी पर तिर आए किरनों के छंद ।

याद तेरी गुलमुहर के फूल
वह विजनगंधी उदासी, अब गई है भूल
गुलमुहर के फूल ।

पास-पास रहे, बहुत उदास रहे
अंगना मेरे बनते आकाश रहे
धीरज की गाँठ बँधी, प्राणों के कूल
गुलमुहर के फूल ।

धूपछाँही झीलों पर लेट गई शाम
सिहरन में गूँजा फिर एक वही नाम
बासी ना होंगे ये, सपनों के शूल
गुलमुहर के फूल ।

झूल गए शाखों पर आदान तम के
फिसल गए ओठों पर अनगाए थम के
आँखें लूँ मूँद उड़ी, सुधियों की धूल
गुलमुहर के फूल ।

△

नील-जमुनी साँझ और कुछ पिरा गई
जब-जब मैंने तुमको याद किया।

कोहनी से छू झर गए अजाने-
खिले-खिले आंगन-बेली के फूल
बनी पंखुरी ओसों की गुनगुनी नदी-
आँखों में झर आए नीम-बबूल
दुहरी होती गईं धूल सी वे घड़ियाँ -
जिन्हें समय-असमय मैंने विकल जिया ।

बेबस सी बहती रुक गई हवा
बादल जैसे आया, वैसे लौट गया
ये क्षण, ये उचाट पड़े क्षण जैसे -
आध-अधूरे सपने से कोई जाग गया
लाल-बैगनी, रूपा-डोरी सी सुधियाँ-
रिस-रिस कर पल-पल जलता एक दिया।

कँचनारी छाँह बीच आँगन दिन-दिन भर
एक सहज जीवन जी लेने आ क्षण भर ।

मुट्ठी भर धूप और अँजुरी भर पानी
रातों की ओसीली चादर हेमानी

रात एक, एक धूप जगे कहीं कण भर
एक शब्द, एक अर्थ जी लेना क्षण भर ।

सरसों सा पियराया तन का भोलापन
सागर के फेनों सा छूता सा मन

एक नदी, कूल एक महकेंगे तन भर
एक गीत, एक मीत जी लेना क्षण भर।

रेंगता दिन, ऊँघती शाम
भागती इच्छाएँ बेकाम
यों जीने से क्या फायदा ।
सारा कुछ छोड़कर कल के भरोसे
अपना मयूरी मन खुद को क्यों कोसे

ख्वाबों के भरे जाम
खुशबू के पंख थाम
रोज मन से नया वायदा ।
उमंगों को पाले मन इतना असंग
शीशे पर उतरी भूख हुई भंग

इस तरह नाकाम
हौसले बदनाम
जिन्दगी का कौन सा यह कायदा ।
ऊल-जलूल बातें यों दिनभर
माथे पर दिये हाथ दिनभर

खुशियाँ रीती तमाम
जीवनभर हाय राम
एक भी सुख मिले फिर गम ज्यादा ।

खिड़की के पल्ले खुले
परदे उड़े सारी रात
पिया कहाँ बँधे तुम रहे।

महक उड़ी चम्पे की गंध -
मौसम ने फेंके गुलाब
हवा बही धीरे, कुछ काँपी -
तीरों से हिली-मिली नाव

सिहर-सिहर बाती जली-
बर्फीली बनी सारी रात
पिया कहाँ बँधे तुम रहे।

उमड़-घुमड़ रहा आसमान-
साँसों में सुधियों की धूल
आँखों से झर-झर गए-
लाखों ये तारों के फूल

गदराए बादल के मीठे-
पहरे पड़े सारी रात
पिया कहाँ बँधे तुम रहे।

मंदिर में घंटे बजे-
झुके-झुके रहे हरसिंगार
विरवा की पाँतों से उलझे-
मान भरे झूठे मनुहार

वादे कल-परसों के
रूठे रहे सारी रात
पिया कहाँ बँधे तुम रहे।

होना इस पहर का —
दरके हों सीने पहाड़ों के।

बर्फीला सूरज, मटियाला दिन
रेती की बाहों में हिरनी के छिन
धूमायित आकृतियाँ कुहरीला मन

जीना इस शहर का —
विरवे हों जैसे पठारों के।

सुबह की चाँदनी ओसों-भींगी
बासी गुलाबों के गीतों में डूबी
जीवन की गीली धूलों में ऊबी

गिरना इस लहर का —
वादे हों कोई इशारों के ।

अपनी ही आँखों उदासी झाँकी
दर्पण ने मन की तस्वीर नहीं आँकी
रोज की उधार खुशी रही नहीं बाकी

पीना इस जहर का —
भारी पग उठते कहारों के।

फिर फैली जाती आज पिया पूनों की वही उदासी ।
संग-संग देखे सपन सुहाने, बन जायेंगे बासी ।।

ओ पिया! जल्दी न लौटेगा क्वार !
बदली घिरेगी, यह सब कुछ न होगा—
बरसेगा निशदिन असार ।

यह झुकी-झुकी सी रात और यह मोमदीप सिरहाने ।
इन रूठी साधों का क्या होगा जो उमड़ रहीं अनजाने ।।

ओ पिया ! झाँके पड़ोसिन दुआर ।
चाँदनी चौक की हवा सी हंसी यह—
साले पियानों के तार ।

नभ पर तन का भार दिए अलसाया चंदा ।
तेरी पलकों की अनकहनी, मन का फंदा ।।

ओ पिया ! वैरी हुए हैं हजार ।
होता यहाँ क्या अपने मन माने —
बिक जाए सपने उधार ।

△

रहे या न रहे कल यह बात -
मौसम का ठिकाना क्या ।

अबीर भरे बादल -
घटाओं के फूल
मिलती हुई दूरियाँ -
डूबते मस्तूल

सुधि-टँके-अँके आँचलों का -
छिपता है वहाना क्या ।

अँजुरी भर चावल
पल्लव का कंगन
रेती पर अक्षर से -
वादे के बंधन

दूर-दूर रहना ही तो फिर-
ये गलतियाँ छिपाना क्या ।

अंतर की बातें ये-
दुख का सम्बन्ध
दुर्दिन के रिश्ते सब-
सुख से अनुबन्ध

साँझ-सुबह-दुपहर हर वक्त
अपना ही चेहरा अजाना क्या।

जो कुछ तुमने दिया
सहेज कर रखा—
आओ इस संझवाती में—
तुमको सौंप दें।

जाते-जाते एक बार फिर लिख दूँ—
हरी स्याही में तुम्हारा नाम
आधी-अधूरी साध के ऊपर—
ओढ़ लूँ रुके वक्त का विराम

इस उदास घेरे से
बाहर हो क्षण भर
आओ मिलजुलकर हम—
कोई विरवा रोप दें।

बर्फ की लकीर से दूर-दूर बीते दिन
सिरजती अजब भंगिमाएँ हैं शाम
यहाँ से भी ऊब गया अब जी है
थके पहर लुट गए मांगे बिन दाम

सहम कर थम से गए
ये दुराव के पहरे
आओ रग में दुखती इन बातों को
कहीं जा गोप दें ।

दीवारों में बन्द यह घुटती हवा
महका-महका रूमालों का छोर
एक टुकड़ा मेघ फिर भटका हुआ-
ये पराए दिन होते कितने बरजोर

हमारी तो कमजोरी सब
जान गए लोग-बाग
आओ फिर भी अपनी सभी गलतियाँ-
मौसम पर थोप दें।

चंदन की अधरतिया बीते ना
प्राण चला चंदा के पार।
नील नयन के सौ दर्पण सँजोकर-
झनका दो मन के सितार।

एक लहर भर आए, तारों की नगरी में
एक पहर जीवन का, गंधों की अँजुरी में

प्यासों के चौकपुरे आंगन में
सजे आज सूनी बहार।
मुस्काओ ऐसे कि गमके कोई —
सपनों के बासन्ती द्वार!

मन का चूनर अछोर, लहराए कूलों में
बाँधो न अपना मन, कस्तूरी भूलों में

अनफूटे निर्झर यों टाँकों न अधरों में —
सिहरेगी पुरवा बयार।
तुम देखो, मैं देखूँ, मिल जाए ऐसे ही —
दोनों दृगों के दो तार।

कहीं छिपाले ये घटा अपने दामन में
गुलाबी अपनापन खिल आए सावन में

तारों की छांवों में नीली लहर पर —
झूमूँ मैं आँचल पसार।
बाँधो न सपनों को देहली में मन की-
शरमाए फागुनी बयार।

△

शरबती हवाएँ जीभर पी लूँ —
औ' फिर याद करूँ सुधियों में बसी छुवन ।
आड़ी-तिरछी रेखाओं से
दिन ढल जाते
बुरा नहीं लगता जो
क्षण छल जाते
माथे का पल्ला और जरा अगुवा —
संयम को जी लूँ —
औ फिर याद करूँ तन-मन की सौ उकसन।
झूठी मुस्कराहटें भरे—
पेबन्द-टँके चेहरे
मन की सौ परतें—
सिर पर शर्तों के सेहरे।
आँखों में रतनार प्रतीक्षा के फाहे -
दिन माह अरप लूँ —
औ फिर याद करूँ जीवन की कई थकन ।
गंधों से भर गए
शून्य के सभी पड़ाव।
तोड़ मौनता के गुण्ठन—
भर गए दुराव
तेरी सुन्दर भंगिमा-सनी मुस्कान-
अँजुरी भर जी लूँ-
और फिर याद करूँ साँसों में बसी घुटन ।

राग के रंग की यह घटा—
छा रही, छा रही—
कुछ यहाँ, कुछ वहां ।

रंग फेंकती धरा कि लाल है गगन
प्यार के हैं इशारे भरे ये पवन
भींगता जा रहा मन मगन, तन मगन
लाल चूनर सजी जिन्दगी—
भा रही, भा रही
कुछ यहाँ, कुछ वहाँ।

सपनीली पलक खुल पड़ी आज है
सुधियों के नगर में बसी लाज है
दूरियों को मिटाकर बजा साज है
प्राण की गंध चन्दन बनी—
आ रही, जा रही—
कुछ यहाँ, कुछ वहाँ ।

ये रंग गुलाल के नहीं, प्राण के
और ये सिलसिले उठते मकान के
ओसों नहाए फूल उजले धान के
नयन-नयन सभा फागुन की—
गा रही, गा रही —
कुछ यहाँ, कुछ वहाँ ।

धरती-आकाश में कहीं नहीं ठौर, कहाँ जाएँ हम ।
चारों दिशाओं में बादल की भीड़, कहाँ छाएँ हम ।।

कोई निरापद न नीड़, यहाँ डाली का
सपना छलकता रहा हरियाली का
छितरायी अंबर में बादल की धूल-
गिरा हुआ फूल जैसे पूजा की थाली का
हमसे बिछुड़ते हमारे ही गान, कहाँ गाएँ हम ।
रोकते रहे आज नैनों के नीर, कहाँ आएँ हम ।।

कागा भी आया तो लाया संदेश उदासी का
आए भी ऐसे कि जैसे हो रूप फूल बासी का
आंचल पसार चली आती है रात -
चंदा लजाया जैसे बलम किसी दासी का
दुख ही मिला तो क्या और कहाँ लाएँ हम।
बांधों न लहराए सपनों के चीर, कहाँ भाएँ हम।।

टूटे-अटूटे रहा-सहा अपनापन खो दूँ ?
दूरी के खेतों में चाहों के बीज आज बो दूँ ?
जाने सुहाती क्यों घातें सपनों की -
अनकह सी भी क्या कुछ जो न कह दूँ ?
बादल के छौनों से बन्धन के पार, कहाँ भाएँ हम ।
मांगों न यादों की बनी तस्वीर, कहाँ पाएँ हम ।।

△

ऐसी न मैं थी
न ऐसे तुम थे
बदल रहे जाने क्यों दोनों के दोनों ।
बन्धन थे मेरे
न बाँधा था तुमको
बँधते गए तुम अपने ही मन से
देहों से दूर किसी—
मन की छुवन को
झेला किया मैंने बरसों विमन से
मेरा पथ न तेरा
बन सका कभी का
आस-पास हो गए दोनों के दोनों ।

मन की कली कोई—
फूटी जो मेरी
गंधों को तुम तक उतारा न मैंने
मुझको भली थी
पगडंडी अपनी
फिर कर भी तुमको निहारा न मैंने
पर देख ओस में
गुलाबों को भींगे
जाने सिहर गए दोनों के दोनों ।
तट से खुली नाव
काँप गई लहरें
मन पर मेहराबों से लाख-लाख पहरे
जन्मता अपनापन को
शापा परायापन ने
एक हँसी को लगे सौ-सौ दुख गहरे
कहते रहे पर नहीं—
तेरा 'तुम' मेरा था
जी रहे विरोधों को दोनों के दोनों।

और बहुत हैं मेरे जैसे नाव पर
ओ रे, क्या होगा—
एक मेरे उतराने से ।

सघन हुआ जाता मन का कुहरा
आज अभाव बहुत गहराया
पड़ी झाइयाँ विश्वासों के दरपन में —
अपनी ही सूरत से मन कतराया

और पड़े हैं नमक औरों के घाव पर
ओ रे, क्या होगा—
एक मेरे कतराने से।

अब सपने ही देख-देख सुख पा लेती
जीवन में जो चाहा, वही न मिल पाया
हर क्षण को घेरे बीनों के बेसुरे राग—
मन का मौसमी गुलाब भी अनगाया

और बहुत हैं मेरे जैसे दांव पर
ओ रे, क्या होगा-
एक मेरे भरमाने से।

बीती बातों का फिर-फिर गुनना-धुनना
और सहज अहसासों से मन का घिरना
महज लालसाओं के चुनते कपास—
पल-छिन सुधिकी नावों का कँपना-थमना

पाले पड़े बहुत औरों के गांव पर
ओ रे, क्या होगा—
एक मेरे कलपाने से।
अब हारें क्या, चुप बैठें क्या
संघर्षों की सुबह-शाम नियति मेरी
देकर भी पाना नहीं भाग मेरा—
बाधाएँ दुगुनातीं राह कठिन मेरी
और बहुत बरसे हैं सूरज छांव पर
ओ रे, क्या होगा—
एक मेरे तरसाने से।

फिर-फिर खड़ी देखना तेरा—
पीछे का आकाश
नयन पर क्षण रुकना ।
भला-भला सा लग जाता —
सूनेपन का वातास
कहीं कुछ का दुखना ।
ओठ हिले भी तो—
न कोई मुस्कान छनी
अँखुवाई वेध गयी—
भीतर की नागफनी
चुप-चुप अँकी-टँकी सी—
तेरे कोई आस-न पास
फटे आखर पढ़ना ।
छाँवों में भी भंगिमा—
सिरज जाने का आभास
महज कुछ-कुछ लिखना ।
जल के आवर्त्तों को देखे—
मौसम हुआ हिरण
देखे, अनदेखे से घूमे—
रीलों वाला मन
क्षण में तिमिर और क्षण छलके
मन के ढेर उजास
कमल पल का खिलना ।

अंधी दीवारों से गत—
संदर्भों के एहसास
नहीं कुछ भी कहना ।
गंधों के रागों से—
भर जाता कहीं निजीपन
शब्द अधूरे, अर्थ पराए—
खलते से बासीपन।
अनबरसे सावन वाला—
कुम्हलाया मधुमास
पात का चू पड़ना ।
आने-जाने वाली आहट-
पर रोपे विश्वास
विमन सब कुछ सुनना ।

बोलो तो सीधे से-
न रहो यों गुमसुम
क्या कहेंगे किनारे क पेड़ ।
साँस लट छू लें तो !
क्षण में मन भूले तो !
कचनारी छाँह-अँकी तेरी
छवि का सम्मोहन फूले तो!

सहज स्नेह का गीलापन-
छाने दो, छाने दो और
आँखें ललाएँगी तेरी सुधि घेर ।
यह कैसी अपरिचय की टक़टकी
छनी हुई गंध भी न अँटी
यह बहती वासंती बयार-
कितनी-कितनी दूरी सहज पटी

ये बोल उलाहनों के -
चलो बहा आएँ
घर पहुँचेंगे आज कुछ सबेर ।
पारदर्शी लहरों में झाँको
धूप और गुलमुहर टाँको
एक साँझ बरसाती और -
एक प्रात वासंती आँको
कुछ क्षण यों बनो सहज
गाँठें खुल जाय सभी-
बातों ही बातों में भींगे कुछ देर ।

△

अब नहीं लगता कहीं भी मन
ये उदासी क्या करूँ।
यह ऊबी-ऊबी हवा
और यह डूबी-डूबी साँझ
लगता कोई अपना नहीं-
इधर-उधर उड़ती धूलों का सूनापन
गंध जरा सी, क्या करूँ।
दुबरायी पत्ती में गेहूँ की कलगी
पियरायी सरसों के सीने से जा लगी
लगता जन्मा सपना नहीं-
भरे-भरे कमरे की चुप्पी, खालीपन
फूल बासी, क्या करूँ।
गोरैयों की नीरस रट
कुछ फूटे घड़े लिए पनघट
तीर पर नावों का कँपना नहीं
मुट्ठी भर तारे ज्यों गैरों का अपनापन
सुधि पलासी, क्या करूँ।

मन का पीरों से भर जाना
कैसा लगता-
प्राणों का पल में बँध जाना ।
धुला-धुला काजल-
और वेणि-बंध का खुलना
और मन के मानसर में रूप कोई घुलना
चुप-चुप सब कुछ सहना
कैसा लगता -
प्राणों का पल में बँध जाना ।
ये पेड़ किनारों के-
दस्तकें हवाओं की
मन में कोई कोलाहल-
हो भीड़ सभाओं की
तट पर नावों का कँपना
कैसा लगता -
लहरों के संग बह जाना।
सामने पड़े चौराहे
आने-जाने वालों की कतार
दुविधाओं से भरा मन-
जो सामने खड़ा हो पहाड़
पाँव का जहाँ-तहाँ पड़ना
कैसा लगता-
पलकों का अनझिप रहना ।

दो राहों के बीच खड़ी अरसे से-
मैं सोच रही-
पर क्या सोच रही।

हाथों में उलझे कुछ धागे
साए ही साए है आँखों के आगे
सुलझाऊँ तो टूटने लगते-
और बड़ी तेजी से मन कहीं भागे

बादल अब बरसे, तब बरसे से -
में देख रही -
पर क्या देख रही।

इधर तो अँधेरे और उधर काँटे
अपना ही खाली मन किसको क्या बाँटे
शोर-शराबों के बीच भी सन्नाटा-
कैसे भर पायेंगे ये दुहरे घाटे

गीले कमलों के पात बड़े तरसे से-
मैं लेख रही-
पर क्या लेख रही।

शहनाई बज गई और मन उचटा
तेरा सम्बन्ध लगा क्यों इतना कटा
भरेपन का जभी होता अहसास-
लगता तभी कुछ चूक गया, कुछ घटा

उनका भी दुखता कुछ खाते जो घर से-
मैं सीख रही-
पर क्या सीख रही।

△

राह अपनी ही चलें हम
ठहरने का क्या सवाल ।
साँच हो या झूठ सबका एक अपना अर्थ
एक सीमा में सभी को बाँध रखना व्यर्थ
आदमी का मोल आँके किस लिए कोई-
जिन्दगी अनर्थ उसके लिए जो असमर्थ
उमर सबकी याचना का एक सिहरा हाथ
रीत जाएगा जिसका सहज ही भराव
चाह अपनी झाँप लें हम
गोप लें मन का मलाल ।

बँध-बँध खुलें नहीं धुएँ की गाँठों सा
स्थितियों की आँच में गले नहीं बरफ सा
जो भी हैं, जैसे हैं, अच्छे हम हैं-
क्या हुआ बातों को न धोएँ सरफ सा
साध मन की महज सागर की लहर का झाग
जो तट की वंचना को दे पाएगा दबाब
थाह अपनी माप लें हम
फिर देख लें तेरा जमाल।
सिमसिमाई लकड़ियों में न सुलगे आँच
और पलकें डबडबाईं, और टूटी पाँख
एक दुख का तीर भी तो वेध जाए-
मान लें सब कुछ सही मूँदकर क्यों आँख
आस पानी की सतह पर तेल की दो बूँद
मन की बातों का तन से क्या जबाब
हाल तो खुद का कहें हम
जाल तेरा ही सँभाल।

दूर-दूर चलती तो मैं हूँ
पीछे तुम छूट-छूट जाते।

बाँधे थे कैसे मनसूबे
पर इतनी जल्दी कैसे ऊबे
पोर-पोर पलती तो मैं हूँ
ऐसे तुम टूट-टूट जाते।

पीड़ा का क्या न यह नया अर्थ
कुंठित गौतम का बनना सिद्धार्थ
बंध-बंध जलती तो मैं हूँ
बनकर तुम फूट-फूट जाते।

कौन दे किसे अब उलहने
बस हैं सुनने को क्या कहने
अंग-अंग रचती तो मैं हूँ
कैसे तुम लूट-लूट जाते।

साधों का लहरा मेहराबी जाल
मछुवों को कर रहा कैसा बेहाल
यहाँ-वहाँ घुलती तो मैं हूँ
मन में तुम घूँट-घूँट जाते।

माथे पर तुम ने रख दिए फूल!
मन पर क्यों, तो सौ-सौ बबूल!

सात-सात रतनार प्रतीक्षा अनियारे
पोर-पोर गंधों के ऐसे मन मारे
करता नहीं मन मेरा कबूल!

बात मन में कुछ, पाँव कैसे सोझ
और सँभले नहीं नत नयन का बोझ
रह-रह गड़ जाता कैसा शूल!

जुड़ गए डब्बे, हिले कुछ हाथ
और क्षण का मिल गया संग-साथ
छितरायी क्यों प्लेटफार्म की धूल!

तन किसी का, मन किसी का-
इस असंगत भूमिका को जी रहा मन ।

परदर्शी तल न होता भावना का -
गुँथी स्मृतियों में न होता संतुलन
भूख तन की और मन की प्यास-
खोज ले किस सेतु पर जा संवरण
पल किसी का, कल किसी का-
स्वेद किसका पोंछ किसका भरूँ दामन ।

दो चार डग चलूँ और मुड़ देखूँ-
पथ पर गड़कर रह गए चिह्न कितने
अजनबी लालसाएँ जो सिरजे जुलूस-
कैसे उनमें खोजे कोई चेहरे अपने
छन किसी का, पन किसी का-
महज दुविधा से भरी आकृति गई बन।

और अपने से कोई कितना करे छल-
स्थिति-स्वीकार में भी वर्जनाएँ
बिना खुद से कहे तो कटती नहीं-
सिहरनों की मौन भाषा-भंगिमाएँ
गत किसी, आगत किसी का-
इस असम संवेग का क्या संतुलन ।

समय मेरे द्वार पर ऐसे रुका—
ज्वार पर कोई किरण का फूल !

अनचाहा वर्तमान, मौन का पड़ाव
टूट-टूट जाता है, गंध का दुराव

ठीका ले भावी का भार यों बिका—
सागर तट जैसे दो नीम, एक बबूल!

खण्डित व्यक्तित्व जले अनगिन अलाव
गहराया वैसे फिर रंग का लगाव

मेंहदिया हाथों पर गाल यों टिका—
प्रतिमा की पीड़ा में मंदिर का कूल !

विज्ञापित हो गया दर्द का भराव
दुविधा में जीता है रूप का विभाव

ठहरायी स्मृतियाँ रेख यों ठिका—
उड़ती अँधेरे बैलगाड़ी की धूल !

आओ, दो क्षण खुलें !
हिलें, गले-गले मिलें !!
तुम्हारी सुनें, कुछ अपनी कहें !!!

रोज की तरह आजकल बीत गए
भरे या न भरे, बहुत कुछ रीत गए
अपने से कब तक यों जूझते रहें !
बाँटकर भोगें हम, बाँटकर सहें !!
तुम्हारी सुनें, कुछ अपनी कहें !!!

दाई आई नहीं, खाना नहीं हुआ
चाय का प्याला बिना धोए रहा
ऐसी दिनचर्या यों कबतक चलें !
बुझते दिए और कबतक जलें !!
तुम्हारी सुनें, कुछ अपनी कहें !!!

विस्तर लगाएँ या फोटो को झाड़ें
चुप बैठें या पुराने पत्रों को फाड़ें
ऐसे भी क्षण क्या टाले न टलें !
गुनगुनाओ भी तो वक्त न खलें !!
तुम्हारी सुनें, कुछ अपनी कहें !!!

फंसी नहीं मछली—
जाल फेंकता रहा मछेरा ।
नीम - छनी चाँदनी
खड़ी राह रोके
समय का पहरुआ-
बार - बार टोके
बूँदे फिर उछलीं—
एक ओर गहरा अंधेरा ।
जाल फेंकता रहा मछेरा ।।
गंधों के मोहपाश
दरवाजे खड़े रहे
लाखों त्योहार-पर्व-
सपनों में पड़े रहे
साधें यों बिछलीं—
तिर आया नैन में सबेरा ।
जाल फेंकता रहा मछेरा ।।
डगमग सी घटनइया
खाँचे हैं खाली
सुधि में समाई है-
पीड़ा घरवाली
कह दे जो ओ छली !
उलट जाय बीच नदी बेड़ा ।
जाल फेंकता रहा मछेरा ।।

।

दुख में क्यों आते वे, साथी जो सुख के
ऐसे सौ अपने से कहीं भले सपने ।

खुशियों के तार-तार बिक गए उधार
भरम का मारा मन, कहाँ आर-पार

भीतर मन जले, दर्द सिहरे चौमुख के
ऊब, थकन, कुण्ठा के प्राण लगे कँपने ।

कहूँ इसे अपनी या तेरी पराजय
जीवन निचाट, नहीं कहीं कोई लय

आँखों में सूनापन गहराये सम्मुख के
पार सभी छल के, अनुभूति लगी तपने ।

कैसे कहूँ कि कोई आया नहीं गया
पर खाली-खाली संदर्भ क्या नया

ओठों पर जमते से कुहरे ये दुख के
नहीं होने के सुख, होने में लगे कमने ।

△

—

रूठते वादे संवरते आज बरसों बाद के
रात भर सोने न देंगे मोरपंखी धन -
तुम्हारी याद के ।

धूमायित आकृतियाँ बीत गए पल की
गहरे संताप तिरे, मछली हो जल की

बौराए पोर-पोर सुधि के संवाद के
सपन-सम्पुट खुले, भरे मोती कण-
तुम्हारी याद के ।

परिचिति न काट सकी धागा दुराव का
फिर भी है रंग नया शून्य के पड़ाव का

हारे या जीते आज प्रश्न ये विवाद के
आँज लूँ काजल-सरीखे नयन अपनापन-
तुम्हारी याद के ।

तोड़ दूँ कैसे खड़ी जो दर्द की दीवार—
तेरे बीच, मेरे बीच
तेरे और मेरे बीच ।
चाहे जितनी भी रही —
शिकायत हो मुझको
मत कहो कि है मुझसे—
अच्छी आदत तुमको
आड़ी-तिरछी रेखाओं के चित्र बिन आकार—
तेरे बीच, मेरे बीच
तेरे और मेरे बीच ।
परिचय के पहले पल का—
एक धागा टूटा
कुछ भरा नहीं भी कहीं—
जदपि इतना छूटा
बातें लेती रहीं जन्म सबकी सब निराधार—
तेरे बीच, मेरे बीच
तेरे और मेरे बीच ।
हम सभी जानते आपस की
सब कमजोरी
पर टूट-टूट कर बंध—
जाने की मजबूरी
यह घुटन और यह टूटन, ऊब, कुण्ठाओं के आसार-
तेरे बीच, मेरे बीच
तेरे और मेरे बीच ।

△

मुझसे न जरूरत होगी कुछ कहने की—
सब कह देगी खिड़की की बीमार हवा ।
जो बातें लगतीं गर्म मुझे
तुमको शीतल
जैसे तपते सिर पर कोई 'यूडीकोलन'!
विश्वासों का स्वर भी बाँध नहीं पाता
तुम दुविधाओं से त्रस्त-ग्रस्त—
अलकोहल बन!
तुम समझ नहीं सकते तो क्या समझाना—
अब तक तो बनी नहीं इसकी भी एक दवा ।
सच, काँटोंवाला फूल नहीं
कम भरमाता
चाहे छूते ही अंग कोई हो छिल जाता !
तुम दूर-दूर से ही जितने अच्छे लगते—
यह बात न कहने की सामीप्य—
अखाड़ जाता!
ओठों में सिल-सिल गए उलहनों के बाने—
हर शब्द पराया हुआ कि मौलिक अर्थ गँवा ।
कट गए खेत और अब
खूँटी सिर्फ बची
फिर भी मजबूरिन को इसकी पाँतें बहुत रूचीं ।
लगता जैसे सम्बन्धों का हर संदर्भ कटा—
पर किस कारण यह और-
उलझनें मचीं
मैं नहीं जानती, क्या कहने से क्या होगा—
तन पलाश का जैसे, मन हो फूल जवा ।

पंखुड़ियों के मेघ
और यह सित परिवा का—
लुकता-छिपता चाँद
जैसे नवब्याहा पाहुन सहम रहा
पार कर देहरी पहली बार।
यह छिटकी-छिटकी किरण
न आई नीचे, भूपर
दुबक गई ऊपर ही-
जैसे पासंग भर बनिया सिमट रहा
और क्वाँरी साधों के फिसले मनुहार।
मेरी सोनिल आशंसाएँ
तेरी अनुराग भरी सुधि
यह प्यार भरी अगवानी—
मन भूल-भूल कुछ ऐसे भरम रहा
तेरी इंगित में महके कितने द्वार।
अनमाँगे, जीवन के—
दो चार पहर ये
ऐसे आए मितवा—
जान बूझकर भी मौसम नरम रहा
पर अकुलाए क्षण-क्षण मन का प्यार।

डूबते दिन सा मन डूब गया—
बाँधे न किसी ने किरणों की छाँव को !

छपक रही गोरइया पोखर की
डुबकियाँ लगाती है साँझ
महुवे के पेड़ भर सनेश फगुनहट का—
भरी-भरी पलकों की पाँज
हिलते शीशम-पातों सा तन सिहर गया—
सौंपे न अगरु-धूम किसी ने ठाँव को !

उलझी सी पातों में गुमसुम हवा
आया गया न कोई, हुआ अबेर
ठहाका सी चाँदनी तेरी हँसी-
अब उदास पहर में झरे कनेर
तुम्हें सहेजा, पर सब बिखर गया—
रोका न किसी ने जानेवाले पाँव को !

काँप गई धूल भरी सतह पोखर की—
फँसते गए कमलों में सेंवार
रात गए पहरू के ठनक उठे बोल—
बन्द हुए धीरे घरों के किबार
जालों में मछली सा मन ठहर गया—
एक धूल भरी पगडंडी जाए गांव को !

जनम-जनम की साध मिटेगी
मत उगना, चंदा रे, लाज उमड़ घिरेगी ।
नयनों के मिस तिरती जाती
अपने आप अँजोरा
उलट गया है चिर संचित
सुधियों का स्वर्ण कटोरा
अंतर का सब द्वन्द्व झेलकर—
जीवित मन की बातें
साँसों ही साँसों में काटीं—
कितनी-कितनी रातें
आवाज मेरी कलियाएगी
मत कहना, चंदा रे, उसकी मति भरमेगी ।

एक नाम की ध्वनि है छाई—
अधरों के कम्पन में
एक रूप का आसव घुला—
मिला है आकुल मन में
एक रंग की आभा से—
चित्रोपम मानस के क्षण
एक गंध से खिल-खुल जाता—
प्राणों का मधुबन
छवि मेरी सौरभ सिरजेगी
मत रहना, चंदा रे, उसकी गति लरजेगी।
आज मिलन का पर्व—
खुले प्राणों के कल्पित बंधन
डूबी हुई दृष्टियों में—
जागे नूतन स्पन्दन
अबके बिछुड़े भी तो—
तड़पेगी न भोली साँस।
विश्वासों के मोती हिलते—
जैसे फूले कास
मेरी रुचि आभा सिरजेगी
मत जलना, चंदा रे, तेरी हर बात रहेगी।

मन कैसा लगे, जब हवा बहे न टहनी हिले !

अंदर की बेचैनी समझ नहीं आती
उलझने अक्सर अच्छी लग जातीं
नाव कागज़ की बहती जल के बुलबुले !

उड़ जाए जब मन का पाल
पट जाए पंखुरियों से ताल
बँध पाते कहाँ हैं कटे मन के जलजले !

अलग-अलग फूलो की अलग-अलग गंध
और-और वेणी के और-और बंध
छाँह में बन्द कोई धूप ऐसे खिल खुले !

उमड़-धुमड़ जाए कोई अनकही बात
कनक मढ़े दरपन से तन के सौगात
और क्या होता वहाँ, हिचकियों के सिलसिले !

हटे नहीं हटते जब पथराए क्षण
मन पर जम जाते बर्फीले दिन
अपना ही मन तब कहता क्या दिन ढले !

△

कृत्रिम समझौते में बीत रहे दिन
झुकी-झुकी टहनी सा दिन
उड़े-उड़े पातों सा दिन।
फाइल में जीवन की गंध सभी बन्द
सुबह कहीं बन्द
शाम कहीं बन्द
अनमने-अनजाने से बीत रहे दिन
खाली मेजों सा दिन
बासी बातों सा दिन।
भरमाता रह-रह कर अपना ही सपना
तन का यह खपना
मन का यह कँपना
आये-गये में ही बीत रहे दिन
उखड़े आलक्तक सा दिन
अधभरे खातों सा दिन।
साधें चुक जातीं सीढ़ियाँ उतरते
कही वादे बिखरते
औ इरादे बदलते
सूने चौराहे से बीत रहे दिन
टूटी प्याली सा दिन
झड़े-झड़े गातों सा दिन।

सुधियों की भँवर गयी डोल
हाथों में काँपता गुलाब रह गया ।

जाने क्यों दिए गए फेंक—
लहरों से रेत पर हम
सीपी औ शंख गए छूट
ठहरे नहीं सेंत पर हम

नाव चली पालों को खोल
कसकता सा मन बेहिसाब रह गया ।

कन्धा को छू मुस्कराई जो चाँदनी
जाने क्यों भरती वह ताने
धूप सोख जाती है अंगराग
बहकाता आसमान मनमाने

पंख ने उड़ान भरे गंध-पवन तौल
प्रश्न थका, हाँफता जबाब रह गया ।

सुई की नोंक चुभी जब-जब
लहर गया रेशमी रूमाल
याद रहने को कम नहीं
मेंहदिया हाथों पर गाल

तुमसे क्या खुद से जो मोह गया रोल
सगा दर्द टालता किताब रह गया।

△

फिर तुमने दुहराए वही आदिम प्रश्न
उत्तर दे न पाऊँगी और दिन की तरह।

काँचों के दरवाजे मेरे—
कब नहीं तोड़े आघातों ने तेरे
पर यदि सेतु टूट जाते ये —
जिनसे अपने ही आँगन घेरे-घेरे
होता तो यह नहीं और होगा भी नहीं
टूट भी न पाऊँगी और मन की तरह।

देह ने महसूस ली प्यास
भूख से मन होता रहा तबाह
अपने कुछ सार्थक क्षणों की
छत पर की वनजारिन धूप है गवाह
धुली खुले बालों वाली चाँदनी उग आजकल
कसती फिसल जाती है मोम-तन की तरह।

ग्रहों ने भटकाकर छोड़ दिए
मोह-दंश से भर गया वर्तमान
क्षण-क्षण जनम लेती दुविधाएँ
दृष्टि खोजती आक्षेपों का समाधान
संबंधों के नए-नए अर्थों को क्यों खोजूँ
सहजता न बँधेगी और क्षण की तरह।

क्रोशिया काढ़े दिन बीते—
अब तो चूल्हे-चौके की बात ।

धूओं से भर जाती घर की छत सुबह-सुबह
किलक और हूनक दे मन की सब बातें कह
कोहबर के पुष्प-रेणु रीते—
अब तो बस सब मौक की बात ।

बेटी सयानी से बूढ़ी सी सास तक
चर्चा सरनाम हुई नैहर की आस तक
मूल्यहीन मूल्य सभी जीते—
आमद-खर्चों में धोखे की बात ।

अब तेरे नाम नहीं शाम का हरेक दर्द
डायरी लिखती है गीतों के साथ कर्ज
अब होते नहीं जीने के कई सुभीते—
पानी पर उठते फोके की बात ।

△

जब से बढ़ा व्यापार
आदम बिक गया।

माँ ने जहाँ पूरे थे चौक—
झड़ आए मकड़ी के जाले
जिस घर में धुआँ ही धुआँ हो—
थम सकते कैसे उजाले
गोबर-लीपे घर-द्वार
शहर-क्षण रुक गया ।

बहन ने पूजी सँझवाती
भाभी ने काजलिया तीज
सड़कों की दोपहरी धूल
उतर गयी मन पर बन खीझ
ऋतु तनावों के पार
रंग असमय चुक गया ।

समय पर पहुँची नहीं
भैया का भेजी गई राखी
पानी पर तेल सा पसरा क्षण
उड़ता मन जैसे वनपाखी
पत्नी का गीतिल प्यार
लिफ़ाफ़ों पर टिक गया।

स्थितियों के टूटे दर्पण
ऐसे में घबड़ाना मत मेरे मन ।

रास्ता कहीं तक नहीं जाता
बीच में ही घेरती दीवार
पगडंडी हो चाहे सड़कें—
रुके पग पथराए लाचार
इच्छाओं के घेरावों के क्षण
ऐसे में घबड़ाना मत मेरे मन ।

जूही के हों या धूलों के ही
जंगल तो होते बस जंगल
वहाँ नहीं जीने की सब सुविधाएँ
आज की आँचों में जलते कल
लड़खड़ाए धीरज के कम्पन
ऐसे में घबड़ाना मत मेरे मन ।

लाएँ कहाँ से अब बीते हुए
हल्दी में रंगे साँझ-भोर
जिन जालों में फँसती मछली
उनमें फँसते अब शोर
सभ्यता ने सोखे समर्पण
ऐसे में घबड़ाना मत मेरे मन ।

△

यह अपनापा, यह अलगाव
खंड क्षंड में बँटकर रह गया है मन ।
रोज नए दुख, खुशियाँ बेपहचानी
मिली नहीं सीपी तक—
लहरें हमने छानी
ऊपर मेल भीतर मनमुटाव
असमतल स्थितियों में उलझ गया जीवन ।
रिश्ते सब बन गए —
छेद हुए घड़े
इश्तहार इरादे—
वादों से भरे
गति-निरत पाँवों में चिपका भटकाव
खुद से लड़ना, टूटना सिरजता है उलझन ।
जी करता रहें नहीं-
अब इस जगह
पसीने का मूल्य
उड़ जाता है बेवजह
रह-रह कर लोग यहाँ देते सुझाव
इन एकरस बातों से ऊब गया पल-छिन ।

सहजन की डाल टँगा सूख रहा जाल
ऐसे में बतियाना करता बेहाल।
गिरे-गिरे केशों सी
पत्तों की छाँह
दुपहरी कर आयी हो जैसे ऋतु-स्नान
बाँसों की फुनगी पर
बैठी है धूप
बादल चबा रहे कोहबर के पान
गोखरू चुभाए और तुम करो सवाल
ऐसे में चुप होना करता बेहाल।

सड़को पर बेपर्द
दृष्टि के जुलूस
जलती सी नग्न या अर्द्धनग्न देह
पानी कल बने हुए
मछुवों के टोल
पनघट की सुधि कोई देता उरेह
खिले-खुले कमलों से गंध भरे ताल
ऐसे में शरमाना करता बेहाल।
आसमान में उड़ते
पक्षी के झुण्ड
ऊँचे मुंडेर से झाँकती आँखें-
कोर में हँसी दाबे
कनखी भर गुलमोहर
उत्तेजित मन सी झुक आयीं शाखें
हिलते किनारों पर उड़े-उड़े पाल
ऐसे में घबड़ाना करता बेहाल।

अस्थिर मन सुनता जब अच्छी खबर
थोड़ा सा रुचने लगता है शहर ।

यहाँ-कहाँ कच्ची-टेढ़ी पगडंडी
ऊँची सीढ़ियों पर फिसलते पाँव
बेपर्द, निरुद्देश्य भटकी सी दृष्टि
निगल गई पूरा ही मर्यादित गाँव
विज्ञापन उगलता नहीं जब जहर
थोड़ा सा रुचने लगता है शहर।

बिजली सोख गई तेल के दिये
फूसों के छाजन को उड़ा दिए मुंडेर
अपना कमल-वन बना सितुही पोखर—
उजड़ गया देखते ही देखते सबेर
भीड़-सूनापन न भेंट करे महानगर
थोड़ा सा रुचने लगता है शहर।

एक धूप में ही बार-बार झुलसना
एक ही धुआँ को तकना रात-दिन
छोटी पर विषम सारी स्थितियाँ—
दिन-माह-बरसों से पल-छिन
मृगतृष्णा में भटके नहीं जब उमर
थोड़ा सा रुचने लगता है शहर।

प्रतीक्षा के सौ स्थलकमल
भावों के गीतिल पल
भरे-भरे मन के आकुल प्रणाम
कितनी सुबह, कितनी शाम
किए अब तक तेरे नाम —
मेरे प्रतीक्षित ओ रे!
रंगों की भँवर-बीच गंधों की नौका
अर्थ के उड़े पाल, शब्द चौंका
भोर हो शरत के या वर्षा की शाम
आँखों में गीत तिरते अनाम
किए अब तक तेरे नाम —
मेरे प्रतीक्षित ओ रे!
मन पर ठहरे से सँवलाए युगबोध
इच्छाओं की उगती कितनी पौध
बँटे-बँटे समय के आयाम
लिखे-अनलिखे पत्र गुमनाम
किये अबतक तेरे नाम
मेरे प्रतीक्षित ओ रे!
समय आता नहीं आने से पहले
जितना जो कहना हो मेरे मन कह ले
जब भी घिरेंगे घनश्याम
प्रतीक्षा करेगी बदनाम
क्या होगी सुबह, क्या शाम—
मेरे प्रतीक्षित ओ रे!

शान्ति सुमन नवगीत की अनन्या कवयित्री एवं समकालीन लेखन की प्रणेत्री हैं। वे नवगीत और जनवादी गीत की मुख्य धारा में दूर तक स्वीकृत, समादृत उच्च स्तरीय रचनाकार हैं।

— राजेन्द्र प्रसाद सिंह

शान्ति सुमन नवगीत की एकमात्र कवयित्री हैं।

— उमाकांत मालवीय

मैं मानता हूँ कि शान्ति सुमन के भीतर गीत की संवेदना निश्छल है, अमिश्रित है। उनके भावावेश अलंकृत नहीं, स्वभावजन्य हैं। वे गीत रचने और उनकी सम्यक प्रस्तुति के लिये ही बनी हैं।

— डॉ. रेवती रमण

नवगीत के प्रारम्भिक स्वरों में कवयित्री का स्वर अपना एक अलग आभा-मंडल तैयार करता रहा है।

.....

शान्ति सुमन का नाम लिये बिना नवगीत का इतिहास अधूरा और अपंग होगा। तमाम वैचारिक मतभेदों एवं प्रस्थान विन्दुओं के बाद भी आलोचक ऐसा महसूस करता है कि नवगीत की पृष्ठभूमि एवं उसके विकास में शान्ति सुमन का महत्वपूर्ण योगदान है।

— डॉ. सुरेश गौतम

गीत के फलक पर शान्ति सुमन का आविर्भाव एक घटना है। जी हाँ, एक घटना। ऐसा कहकर मैं उन्हें महिमामंडित नहीं कर रहा। मेरे पास इसके ठोस और वाजिब आधार हैं।.... मुजफ्फरपुर की एक युवा क़वयित्री ने अपने नवगीत संग्रह के साथ अपना होना प्रमाणित किया। कवयित्री थीं - शान्ति सुमन और संग्रह था - 'ओ प्रतीक्षित'।

— सत्यनारायण

बिम्बों के मामले में शान्ति सुमन जी ज्यादा संवेदनशील हैं। नवइयत की तलाश की अपेक्षा अनुभूत्यात्मक कोमलता पर उनकी दृष्टि अधिक रहती है।

— डॉ. विश्वनाथ प्रसाद

कवयित्री में - एक बेहद वेगवती - अप्रतिहत तड़प है अनुभूति को व्यक्त करने की।

— ओम प्रभाकर

आपने गीतों में बहुत सारे शब्दों को गढ़ने का प्रयास किया है। कुछ शब्द अपने खुरदुरेपन में ही अच्छे

शान्ति सुमन

जन्म	:	15 सितम्बर, 1942, उत्तर बिहार के सहर्षा जिला के कासीमपुर गाँव में।
शिक्षा	:	एम. ए. (हिन्दी), पीएच. डी.
उपलब्धियाँ	:	-
गीत-संग्रह	:	ओ प्रतीक्षित-'70, परछाई टूटती-'78, सुलगतेपसीने-'79, पसीने के रिश्ते-'80, मौसम हुआ कबीर-'85, मेघ इन्द्रनील (मैथिली गीत-संग्रह) -'91, तप रहे कँचनार-'97, भीतर-भीतर आग-'02, पंख-पंख आसमान (एक सौ एकचुने हुए गीतों का संग्रह)-'04, एक सूर्य रोटी पर-'06, धूप रँगे दिन-'07
कविता-संग्रह	:	समय चेतावनी नहीं देता-'94, सूखती नहीं वह नदी-'09
उपन्यास	:	जल झुका हिरन-'76
आलोचना	:	मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य-'93
सम्पादन	:	सर्जना, अन्यथा, भारतीय साहित्य, कन्टेम्पररी इन्डियन लिटरेचर (दोनों दिल्ली से), बीज। देश की प्रमुख साहित्यिक पत्रिकाओं में रचनायें प्रकाशित एवं विभिन्न आकाशवाणी तथा दूरदर्शन केन्द्रों से प्रसारित। गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर सर्वभाषा कवि-सम्मेलन (दिल्ली) में तमिल कविता का हिन्दी में अनुवाद-पाठ।
सम्मान एवं पुरस्कार	:	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना से साहित्य सेवा सम्मान से सम्मानित एवं पुरस्कृत। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से कविरत्न सम्मान, बिहार सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा महादेवी वर्मा सम्मान से सम्मानित एवं पुरस्कृत। अवंतिका (दिल्ली) से विशिष्ट साहित्य सम्मान, मैथिली साहित्य परिषद् से विद्यावाचस्पति सम्मान, नारी सशक्तिकरण के उपलक्ष्य में सुरंगमा सम्मान, विन्ध्य प्रदेश से साहित्यमणि सम्मान, 2005 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से साहित्य भारती एवं 2006 में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा सौहार्द सम्मान से सम्मानित एवं पुरस्कृत।
सम्प्रति	:	बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय की अंगीभूत इकाई एम.डी.डी. एम. कालेज मुजफ्फरपुर-842002 के हिन्दी के विभागाध्यक्ष पद से सेवानिवृत्ति के बाद स्वतंत्र लेखन।
स्थायी सम्पर्क	:	ईशान, मीठनपुरा, क्लब रोड (वी.सी. गली), रमना, मुजफ्फरपुर - 842002 दूरभाष : 0621—2270895